विश्व-परिचय

विश्व-परिचय

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा अनुवादित)

विश्वभारती ग्रन्थालय

२१०, कार्नवालिस स्ट्रीट,

कलकत्ता

विश्वभारती ग्रन्थन-विभाग
२१०, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।
प्रकाशक—श्रीकिशोरीमोहन सांतरा

विश्व-परिचय

प्रथम संस्करण
कातिक, सं० १६६५

मूल्य—एक रुपया

शान्तिनिकेतन प्रेस में प्रभात कुमार मुखोपाध्याय
द्वारा मुद्रित।

श्रीयुत सत्येन्द्रनाथ वसु,

प्रियवर,

इस पुस्तक को तुम्हारे नाम के साथ युक्त कर रहा हूं। कहना व्यर्थ है कि इसमें विज्ञान की ऐसी सम्पत्ति नहीं है जो विना संकोच तुम्हारे हाथों में दी जा सके। इसके सिवा अनधिकार प्रवेश के कारण इस में बहुत-सी ग़लतियाँ रह गई होंगी, इस आशंका से लज्जा भी अनुभव कर रहा हूं; बहुत संभव, इसे दे कर तुम्हारे सम्मान की रक्षा ही नहीं हो सकी है। प्रमाण्य ग्रन्थों को सामने रख कर मैं ने यथा-साध्य निगौनी की है। कुछ काम की चीजें भी उखड़ गई हैं। मेरे इस दुःसाहस के दृष्टान्त से यदि कोई मनीषी, जो एक ही साथ साहित्य-रसिक भी हों और विज्ञानी भी, इस अत्यावश्यक कर्तव्यकर्म के लिये तत्पर हों तो मेरा प्रयत्न सफल होगा।

जिन्होंने शिक्षा आरंभ की है, उन्हें शुरू से ही विज्ञान के भांडार में नहीं तो उसके आँगन में प्रवेश करना अत्यावश्यक है। इस स्थान पर विज्ञान का प्रथम परिचय कराने के कार्य में साहित्य की सहायता स्वीकार कर लेने में कोई अगौरव की बात नहीं। यही दायित्व लेकर मैंने कार्य शुरू किया है। लेकिन इसकी जवाबदेही अकेले साहित्य के प्रति ही नहीं है, विज्ञान के प्रति भी है। तथ्य की यथार्थता और उसके प्रकाश करने

के औचित्य के संबंध में विज्ञान थोड़ी-सी त्रुटि भी क्षमा नहीं करता। इस ओर भी मैं यथासम्भव सतर्क रहा हूं। वस्तुतः मैं ने कर्तव्य समझ कर ही लिखा है, लेकिन वह कर्तव्य केवल विद्यार्थियों के प्रति ही सीमित नहीं है, स्वयं अपने प्रति भी है। इसे लिखने के कार्य में मुझे अपने आपको भी शिक्षा देते हुए आगे बढ़ना पड़ा है। छात्र मनोभाव की यह साधना शायद विद्यार्थियों की शिक्षा साधना के लिये उपयोगी हो भी सकती है।

अपनी कैफियत कुछ विस्तार के साथ ही तुम्हारे सामने देनी पड़ रही है। क्योंकि ऐसा करने से ही इसके लिखने में मेरा जो मनोभाव रहा है वह तुम्हारे निकट स्पष्ट हो सकेगा।

विश्व-जगत् ने अपने अति छोटे पदार्थों को छिपा रखा है और अत्यन्त बड़े पदार्थों को छोटा बना कर हमारे सामने उपस्थित किया है अथवा नेपथ्य में हटा रखा है। उसने अपने चेहरे को इस प्रकार सजा कर हमारे सामने रखा है कि मनुष्य उसे अपनी सहज बुद्धि के फ्रेम में बैठा सके। किन्तु मनुष्य और चाहे जो कुछ भी हो, सहज मनुष्य नहीं है। वही एक ऐसा जीव है जिसने अपने सहज बोध को ही संदेह के साथ देखा है, उसका प्रतिवाद किया है और हार मानने पर ही प्रसन्न हुआ है। मनुष्य ने सहज शक्ति की सीमा पार करने की साधना के द्वारा दूर को निकट बनाया है, अदृश्य को प्रत्यक्ष किया है, और दुर्बोध को भाषा दी है। प्रकाशलोक के अन्तराल में जो अप्रकाश लोक है, उसी गहन में प्रवेश करके मनुष्य

ने विश्व-व्यपार के मूल रहस्य को निरन्तर उद्घाटित किया है। जिस साधनाके द्वारा यह सब संभव हुआ है उसके लिये सुयोग और शक्ति पृथ्वी के अधिकांश मनुष्यों के पास नहीं है। फिर भी जो लोग इस साधना की शक्ति और दान से एक दम वंचित रह गये हैं, वे आधुनिक युग के सीमान्त प्रदेश में जाति-वहिष्कृत हो गये हैं।

बड़े वन में वृक्षों के नीचे सूखे पत्ते अपने आप गिर पड़ते हैं और मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं। जिन देशों में विज्ञान की चर्चा होती रहती है वहां ज्ञान के टुकड़े टूट टूट कर निरंतर बिखरते रहते हैं। इससे वहां की चित्तभूमि में उर्वरता का जीव धर्म जाग उठा करता है। उसीके अभाव में हमलोगों का मन अवैज्ञानिक हो गया है। यह दीनता केवल विद्याके विभाग में नहीं, कार्यक्षेत्र में भी हम लोगों को अकृतार्थ कर रही है।

मेरे जैसा अनाड़ी जो इस अभाव को थोड़ा-सा भी दूर करने के प्रयत्न में लगा है, इस से वे ही लोग सब से अधिक कौतूहल अनुभव करेंगे जो मेरे ही जैसे अनाड़ियों के दल में हैं। किन्तु मुझे भी कुछ थोड़ा कहना है। बच्चे के प्रति माता का औत्सुक्य तो रहता है लेकिन डाक्टर की तरह उसे विद्या नहीं आती। विद्या तो वह उधार ले सकती है पर उत्सुकता उधार नहीं ली जा सकती। यह औत्सुक्य सेवा-शुश्रूषा में जिस रस को मिला देता है वह अवहेला की चीज़ नहीं है।

यह कहना ही व्यर्थ है कि मैं विज्ञान का साधक नहीं

।

हूं। किन्तु बाल्यकाल से ही विज्ञान का रस आस्वादन करने में मेरे लोभ का अन्त नहीं था। उस समय मेरी अवस्था शायद नौ दस वर्ष की होगी; बीच बीच में रविवार के दिन अचानक सीतानाथ दत्त महाशय आ जाते थे। आज जानता हूं, उनके पास पूंजी बहुत अधिक नहीं थी किन्तु विज्ञान की दो एक साधारण बातें जब वे दृष्टान्त दे कर समझा देते तो मेरा मन आश्चर्य से भर जाता। याद आता है जब उन्हों ने पहले पहल काठ का बुरादा देकर दिखा दिया कि आग पर चढ़ाने से नीचे का गर्म पानी हलका हो कर ऊपर उठता रहता है और ऊपर का ठंडा और भारी पानी नीचे उतरता रहता है, इसी लिये पानी खौलता है, तो अनवच्छिन्न जल में एक ही समय ऊपर और नीचे निरन्तर इतना भेद घट सकता है यह देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था। उस आश्चर्य की स्मृति आज भी मन में विद्यमान है। जिस घटना को स्वतः सहज समझ कर बिना सोचे बिचारे मान लिया था, वह सहज नहीं है, इस बिचार ने शायद पहले पहल उसी दिन मेरे मन को चिन्तामग्न किया था। इस के बाद अवस्था जब शायद बारह की होगी (यह कह रखना अच्छा है कि कोई कोई आदमी जैसे रंग-के अंधे होते हैं अर्थात् रंग नहीं देख सकते वैसे ही मैं तारीख-का-अंधा हूं—मैं तारीख याद नहीं रख सकता) उस समय पूज्य पिता जी के साथ डलहौसी पहाड़ पर गया था। सारा दिन टोकरियों में लद कर शाम को डाकबंगले

तक पहुंचता। पिताजी कुर्सी निकाल कर आंगन में बैठ जाते। देखते-देखते, गिरिशृंगों से वेष्टित निबिड़ नील अंधकार में जान पड़ता तारिकायें उतर आई हैं। वे मुझे नक्षत्रों की पहिचान करा देते। केवल परिचय ही नहीं, सूर्य से उनकी कक्षा की दूरी, प्रदक्षिणा में लगने वाला समय और अन्यान्य विवरण मुझे सुना जाते। वे जो कुछ कह जाते उसे याद करके उन दिनों अनभ्यस्त लेखनी से मैं ने एक बड़ा-सा प्रबंध लिखा था। रस मिला था, इसीलिये लिख सका था। जीवन में यह मेरी पहली धारावाहिक रचना थी, और वह थी वैज्ञानिक संवादों के आधार पर।

इसके बाद उम्र बढ़ती गई। उन दिनों तक मेरी बुद्धि इतनी खुल गई थी कि अन्दाज से अंग्रेजी भाषा समझ सकूं। सहजबोध्य ज्योतिर्विज्ञान की पुस्तकें जहां-कहीं जो-कुछ मिलीं उन्हें पढ़ने में कोई कोर कसर नहीं रखी। बीच बीच में गणित-संबंधी दुर्गमता के कारण मार्ग वन्धुर हो उठा था फिर भी उसकी कृच्छ्रता के ऊपर से ही मन को ठेल-ठाल कर आगे बढ़ाता गया। इस से मैं ने यह बात सीखी है कि जीवन की प्रथम अभिज्ञता के मार्ग में हम जो सब कुछ समझते हों सो बात नहीं है, और सब कुछ स्पष्ट न समझने के कारण हम आगे न बढ़ते हों, यह बात भी नहीं कह सकते। जल-स्थल विभाग की भाँति ही हम जितना समझते हैं उस से कहीं अधिक नहीं समझते, तोभी काम चल जाता है और हम आनन्द भी पाते

हैं। कुछ अंश में न समझना भी हमें अग्रसर होने के मार्ग में आगे ठेल देता है। जब मैं लड़कों को पढ़ाया करता था तो यह बात मेरे मन में रहती थी। मैं ने कई बार बड़ी अवस्था का पाठ्य साहित्य छोटी उम्र के विद्यार्थियों को पढ़ाया है। उन्होंने कितना समझा है, इसका पूरा हिसाब नहीं लिया ; लेकिन यह जानता हूं कि हिसाब के बाहर भी वे बहुत कुछ समझ लेते हैं, जो निश्चय ही अपथ्य नहीं है। यह बोध परीक्षक की मार्क देने वाली पेन्सिल के अधिकार का नहीं है किन्तु इसका मूल्य काफी है। अन्ततः मेरे जीवन से यदि इस प्रकार बटोर कर संग्रह की हुई बातें निकाल दी जाँय तो बहुत-कुछ जाता रहेगा।

मैं ज्योतिर्विज्ञान की सरल पुस्तकें पढ़ने लगा। उन दिनों इस विषय की पुस्तकें कम नहीं निकली थीं। सर राबर्ट बाल की बड़ी पुस्तक ने मुझे काफी आनन्द दिया है। इस आनन्द का अनुसरण करने की आकांक्षा से निउकोम्बस्, फ्लामरियँ प्रभृति अनेक लेखकों की अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं— बीज और रेशा समेत निगलता गया हूं। इसके बाद एक बार साहस संचय करके हक्सली की लिखी हुई प्राणितत्त्व संबन्धी एक निबन्धमाला शुरू की। ज्योतिर्विज्ञान और प्राणिविज्ञान केवल इन दो विषयों को हो मैं उलटता-पुलटता रहा। इसे पक्की शिक्षा नहीं कह सकते अर्थात् इसमें पांडित्य की कड़ी गँथाई नहीं है। किन्तु निरंतर पढ़ते पढ़ते मन में एक वैज्ञानिक वृत्ति स्वाभाविक हो उठी थी ; आशा करता हूं,

अंधविश्वास की मूढ़ता के प्रति मेरी जो अश्रद्धा है उसने बुद्धि की उच्छृंखलता से बहुत दूर तक मेरी रक्षा की है। फिर भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि उक्त कारण से कवित्व के इलाके में कल्पना के महल की कोई विशेष हानि हुई है।

आज आयु के अन्तिम पर्व में मन नये प्राकृत तत्त्व—वैज्ञानिक मायावाद—से अभिभूत है। उन दिनों जो कुछ पढ़ा था, उस का सब समझ नहीं सका था, लेकिन फिर भी पढ़ता ही गया। आज भी जो कुछ पढ़ता हूं उसमें का सब कुछ समझना मेरे लिये संभव नहीं है और अनेक विशेषज्ञ पंडितों के लिये भी ऐसा ही है।

जो लोग विज्ञान से चित्त का खाद्य संग्रह कर सकते हैं वे तपस्वी हैं।—मिष्टान्नमितरे जनाः, मैं केवल रस पाता हूं। इस में गर्व करने की कोई बात नहीं है, किन्तु मन प्रसन्न हो कर कहता है, यथालाभ। यह पुस्तक उस यथालाभ की ही झोली है। मधुकरी वृत्ति का आश्रय करके सात पांच घरों से इसका संग्रह किया गया है।

पाण्डित्य तो अधिक है ही नहीं, इस लिये उसे अज्ञात बना रखने के लिये विशेष उद्योग नहीं करना पड़ा। प्रयत्न किया है भाषा की ओर। विज्ञान की सम्पूर्ण शिक्षा के लिये पारिभाषिक शब्दों की ज़रूरत है। लेकिन पारिभाषिक शब्द चर्व्य (चबाकर खाये जाने वाले) पदार्थ की जाति के हैं, दाँत जमने के बाद वे पथ्य होते हैं। यह बात याद करके जहाँ तक हो

सका है परिभाषाओं से बच कर सहज भाषा की ओर ही ध्यान दिया है।

इस पुस्तक में एक बात को लक्ष्य करना—इसकी नाव अर्थात् इसकी भाषा सहज ही चल सके, यह कोशिश तो इसमें है परन्तु माल बहुत कम करके हल्का बनाने को मैं ने अपना कर्तव्य नहीं माना। दया करके वञ्चित करने को दया करना नहीं कहते। मेरा मत यह है कि जिनका मन अर्धविकसित है, वे जितना स्वभावतः ले सकेंगे, उतना ले लेंगे बाकी को अपने आप छोड़ देंगे। लेकिन इसी कारण से उन के पत्तल को प्रायः भोज्यशून्य कर देने को सद्व्यवहार नहीं कहा जा सकता। मन लगाना और कोशिश करके समझने का प्रयत्न करना भी शिक्षा का अंग है, वह आनन्द का ही सहचर है। बाल्यकाल में अपनी शिक्षा का जो प्रयत्न मैं ने ग्रहण किया था उस पर से यही मेरी अभिज्ञता है। एक विशेष उम्र में जब दूध अच्छा नहीं लगता था उस समय मैं बड़ों को धोखा देने के लिये दूध को नीचे से ऊपर तक फेनिल कर के कटोरा भरने का षड्यंत्र किया करता था। जो लोग बालकों के पढ़ने की किताबें लिखा करते हैं, देखता हूं, वे भी काफी मात्रा में फेन की व्यवस्था किया करते हैं। यह बात वे भूल जाते हैं कि ज्ञान का जैसा आनन्द है, वैसा ही उसका मूल्य भी है ; लड़कपन से ही उस मूल्य के चुकाने में कसर करने से यथार्थ आनन्द के अधिकार पाने में भी कसर रह जाती है। चबा कर खाने से जहां

एक तरफ़ दाँत मज़बूत होते हैं वहाँ दूसरी तरफ भोजन का पूरा स्वाद भी मिलता है। यह पुस्तक लिखते समय यथासाध्य इस बात को भूलने नहीं दिया है।

श्रीमान् प्रमथनाथ सेनगुप्त एम० एस-सी० तुम्हारे ही पुराने विद्यार्थी हैं। वे शान्तिनिकेतन विद्यालय में विज्ञान के अध्यापक हैं। पहले मैं ने इस पुस्तक के लिखने का कार्य उन्हीं को सौंपा था। धीरे धीरे हटते हटते सारा भार अन्त में मेरे ऊपर ही आ पड़ा। वे अगर शुरू न करते तो मैं समाधा न कर सकता। इसके सिवा अनभ्यस्त रास्ते पर अव्यवसायी के साहस से काम भी नहीं चलता। उनके पास से मुझे भरोसा भी मिला है और सहायता भी मिली है।

अलमोड़ा आकर, एकान्त में, इसका लिखना पूरा कर सका हूं। मेरे स्नेहास्पद मित्र वशी सेन को पाने से एक अच्छा अवसर भी मिल गया। उन्हों ने यत्नपूर्वक यह सारी रचना पढ़ी है। पढ़ कर प्रसन्न हुए हैं, यही हमारे लिये सब से बड़ा लाभ है।

मेरी अस्वस्थता की हालत में स्नेहास्पद श्रीयुक्त राजशेखर वसु महाशय ने बड़े यत्न के साथ प्रूफ़ संशोधन करके पुस्तक प्रकाशित करने के कार्य में मुझे विशेष सहायता दी। इसलिये उनके प्रति कृतज्ञ हूं।

शान्तिनिकेतन
२ आश्विन, १३४४

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक का वक्तव्य

विश्व-परिचय कवि की भाषा में लिखी हुई वैज्ञानिक पुस्तक है। बंगला में ८-१० महीनों के भीतर पुस्तक चार बार छप चुकी। प्रतिबार लेखक ने इस में संशोधन और परिवर्धन किये हैं। यह अनुवाद जब आधा छप चुका था तभी मूल पुस्तक चौथी बार संस्कृत और परिवर्धित हुई और अनुवाद की छपाई समाप्त होने के पहले ही छप गई। इसीलिये इस सब से नये संस्करण का उपयोग अनुवाद में नहीं किया जा सका।

विश्व-परिचय बालकों लिये लिखा गया है, परन्तु प्राप्त-वयस्क विद्वानों को भी इसमें कम आनन्द नहीं मिलेगा। अनुवादक को अनुवाद करते समय भाषा की सरलता और उसका माधुर्य दोनों का सामञ्जस्य करते हुए चलना पड़ा है। कभी कभी निरुपाय हो कर दोनों में से किसी एक का मोह छोड़ना भी पड़ा है। भाषा के माधुर्य का मोह छोड़ने में उसे प्रायः ही कठिनाई में पड़ना पड़ा है।

एक बात हिंदी के पाठकों को इस में नई जान पड़ सकती है। मूल लेखक बंगला में प्रश्नवाचक और विस्मयादि बोधक चिह्नों का प्रयोग बहुत कम करते हैं। उनका कहना है कि अंग्रेजी से इन चिह्नों को हमें सोच समझ कर ही ग्रहण करना चाहिये।

हमारी भाषाओं के कहाँ, क्या आदि शब्द अंग्रेजी के where which आदि जैसे द्वयर्थक नहीं हैं। उनमें स्वयं प्रश्न का भाव है। इसी लिये अंग्रेजी में जब इन शब्दों के लिये प्रश्नवाचक चिह्न दिये जाते हैं तब तो ठीक है, पर हिंदी बंगला आदि भाषाओं में प्रश्न का चिह्न देना निरर्थक है। अनुवाद में भी इस युक्ति को स्वीकार कर लिया गया है।

— ——

सूची

ऐण्ड्रोमीडा की नीहारिका

विश्व-परिचय

परमाणुलोक

हमारा सजीव शरीर कई बोध या समझ की शक्तियों को ले कर पैदा हुआ है, जैसे देखने का बोध, सुनने का बोध, सूंघने का बोध, चखने का बोध और छूने का बोध। इन्हीं को हम अनुभूति कहते हैं। इन के साथ हमारा अच्छा-बुरा लगना और हमारे सुख-दुःख गुंथे हुए हैं।

हमारी इन अनुभूतियों की सीमा बहुत अधिक नहीं है। हम बहुत थोड़ी दूर तक ही देख सकते हैं और बहुत कम बातें सुन सकते हैं। अन्यान्य बोध शक्तियों की दौड़ भी बहुत दूर तक नहीं है। इसका मतलब यह है कि हम जितनी शक्ति का सम्बल ले कर आये हैं वह इसी हिसाब से मिली है कि हम इस पृथ्वी पर अपने प्राण बचा रखें।

जिस नक्षत्र से पृथ्वी का जन्म हुआ है और जिसकी ज्योति इसके प्राणों का पालन कर रही है वह है सूर्य। इस सूर्यने हमारे चारों ओर प्रकाश का पर्दा टाँग दिया है। पृथ्वीके सिवा इस विश्वमें और भी कुछ है, यह बात वह देखने नहीं देता। किन्तु दिन समाप्त होता है, सूरज डूबता है, आलोक का पर्दा

हट जाता है, और अन्धकार को छाप कर असंख्य नक्षत्र निकल पड़ते हैं। तब हम समझ सकते हैं कि इस विश्व की चौहद्दी पृथ्वी को छोड़ कर बहुत दूर तक चली गई है। किन्तु केवल अनुभूतियों के बल पर हम यह नहीं समझ सकते कि यह दूरी कितनी है।

इस दूरी के साथ हमारा एकमात्र योग आंखों के देखने से है। वहाँ से कोई आवाज़ नहीं आती, क्यों कि आवाज़ का बोध हवा से होता है। यह हवा चादर की तरह पृथ्वी पर लिपटी हुई है। हवा पृथ्वी पर ही शब्द उत्पन्न करती है और उस के तरंगों को इधर उधर चलाया करती है। पृथ्वी के बाहर घ्राण (गंध) और स्वाद का कोई अर्थ ही नहीं होता। हमारे स्पर्श बोध में गर्मी और सर्दी अनुभव करने का एक बोध है। पृथ्वी के बाहर इस बोध का संबंध कम से कम एक जगह काफी अधिक है। सूर्य से धूप आती है और धूपसे गर्मी। इस गर्मी से हमारे प्राण बचे हुए हैं। ऐसे भी नक्षत्र हैं जो सूर्य से लाखों गुना अधिक गर्म हैं पर उनकी गर्मी हमारे बोध तक नहीं पहुंचती। लेकिन सूर्य को तो हम पराया नहीं कह सकते। जिन असंख्य नक्षत्रों से यह विश्व-ब्रह्माण्ड बना है, सूर्य उनमें हमारा सब से अधिक 'अपना' है। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि सूर्य पृथ्वी से है बहुत दूर। कम दूर नहीं, नौकरोड़ तीस लाख मील दूर। सुन कर चौंक उठने से काम नहीं चलेगा। जिस ब्रह्मण्ड में हम रह रहे हैं उस में यह दूरी नक्षत्र

लोक की सब दूरियों निचले दर्जे की है। कोई भी दूसरा नक्षत्र इससे अधिक नज़दीक नहीं है।

इतनी दूरी की बात सुनकर हमारा मन चौंक उठता है, क्यों कि जल और मिट्टी से बना हुआ यह पिंड अर्थात् यह पृथ्वी बहुत ही छोटी है। पृथ्वी की सब से बड़ी रेखा अर्थात् उसकी विषुवरेखा के कटिवेष्टन का रास्ता सिर्फ २५ हजार मीलों का है। विश्व के साथ हमारा परिचय ज्यों ज्यों बढ़ता जायगा त्यों त्यों हम देखेंगे कि संसारके बृहत्त्व और दूरत्व की सूची में यह पचीस हजार की संख्या निहायत मामूली है। यह पहले ही कहा गया है कि हमारी बोध शक्ति कि सीमा बहुत छोटी है। जिस दूरी को लेकर हमें सर्वदा कारबार करना पड़ता है वह तो और भी थोड़ी है। किन्तु हमारे प्राणधारण का प्रयोजन उसी में समाप्त हो जाता है और बहुत कुछ बच भी रहता है। इसी मामूली दूरी के भीतर ही हमारे देखने और चलने फिरने का लेखा-जोखा निर्दिष्ट है।

लेकिन जब पर्दा उठा तो हमारी अनुभूति की इस मामूली सीमा के भीतर ही बृहत् विश्वने नितान्त छोटा बनकर एक हल्के से इशारे से अपने आप को प्रकट किया, अगर वह ऐसा न करता तो हमारा जानना होता ही नहीं, क्योंकि बड़ी चीज को देख सकने लायक आंख हमारे पास नहीं है। अन्य जीवोंने इतना-सा देखने को ही मान लिया, उनकी अनुभूति की पकड़ में जितना कुछ आ गया उतने से ही वे सन्तुष्ट हो गये लेकिन

मनुष्यको सन्तोष नहीं। इन्द्रिय बोध ने वस्तु का ज़रा-सा आभासमात्र दिया। किन्तु मनुष्य की बुद्धि की पहुंच उसकी बोध शक्ति की पपेक्षा बहुत अधिक है। संसार में जितनी पहुंच हो सकती है, सब के साथ दौड़ लगाने की स्पर्द्धा उस में है। वह (बुद्धि) इस विराट् जगत् की विराट् पैमाइश की खबर लेने निकल पड़ी, अनुभूति ने बच्चों को फुसलाने वाली जो अफवाह उड़ा रखी थी उसे उसने अस्वीकार कर दिया। नौ करोड़ तीस लाख मीलों को हम किसी प्रकार अनुभव नहीं कर सकते, किन्तु फिर भी बुद्धि हार माननेवाली नहीं; वह हिसाब लगाने बैठ गई।

बाहर के विश्व लोक की बात तब तक छोड़ दी जाय, जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उस से अधिक निकट तो और कुछ नहीं है। तौभी इस के समस्त अंगों को एक साथ देख सकना हमारे बोध के लिये असम्भव है। किन्तु एक छोटे से ग्लोब पर यदि उसका मानचित्र अंकित देखें तो पृथ्वी को समग्र रूप से जानने की एक मामूली नींव पड़ जाती है। आयतन की दृष्टि से यह ग्लोब पृथ्वी के कई हजार हिस्सों में से एक हिस्सा है। हम अन्यान्य बोधों को छोड़ कर केवलमात्र दृष्टिबोध की खरोंच से खुरचा हुआ परिचय ही इस में पाते हैं। विस्तारित विवरण के हिसाब से देखा जाय तो यह परिचय एक दम पोला है। अधिक देखने की शक्ति हम में नहीं है, इसी लिये इसे छोटा करके ही देखना पड़ा।

प्रति दिन रातमें इस विश्व को छोटा करके हमारे सामने रखा जाता है, मानो उसे हमारे सिर के ऊपर आकाश रूपी ग्लोब में दिखाया जाता है। दृष्टिबोध के सिवा और कोई भी बोध इसमें स्थान नहीं पाता। जिसकी बात सोचने से भी मन अभिभूत हो जाता है उसी इतने विराट् विश्व को दिक्-चक्रवाल से आबद्ध इस छोटे से आकाश में बंद करके हमारे सामने रख दिया गया है।

कितना छोटा करके रखा गया है, इस बात का ज़रा-सा अन्दाज़ा लगाने के लिये सूर्य का दृष्टान्त मन में लाना होगा। स्वभावतः ही हम जितनी बड़ी चीजों को जान या अनुभव कर सकते हैं उन में सबसे बड़ी है यह पृथ्वी। इसे हम टुकड़ा टुकड़ा करके ही देख सकते हैं। फिरभी सूर्य इस पृथ्वी से चौदह लाख गुना बड़ा है। इतना बड़ा सूर्य आकाश के एक किनारे सोने की एक थाली-जैसा दिखाई देता है। सूर्य के भीतर होने वाले भीषण उथल-पुथल की खबर जब मालूम होती है और उसके बाद जब देखता हूं कि प्रातःकाल हमारे आम के बागीचे के पीछे वह सोने की पहिया (सूर्य) धीरे धीरे ऊपर उठती है, जीव जन्तु और वृक्ष-लतायें आनन्दित हो उठती हैं; तब सोचा करता हूं, हमें किस प्रकार भुला रखा गया है। हम से कह दिया गया है कि तुम्हारे जीवन के कारबार में इस से अधिक जानने की कोई ज़रूरत नहीं। और अगर हम भुलाये न गये होते तो जीते भी कैसे। वह सूर्य अपने विराट् स्वरूप

में जो-कुछ है, वह यदि हमारी अनुभूति के थोड़ा भी निकट आता तो हम मुहूर्त्त भर में लुप्त हो जाते। यह तो हुई सूर्य की बात। इस सूर्य से और भी अनेक-गुना बड़े और भी करोड़ों नक्षत्र हैं। उन्हें हम प्रकाश के कई छोटे छोटे विंदुओं के समान देख रहे हैं। जिस दूरत्व के भीतर नक्षत्र छितराये हुए हैं, सोच कर उसका कोई कूल-किनारा नहीं पाया जाता। जिस आसमान में विश्व जगत् का यह डेरा है वह कितना बड़ा है, इसकी धारणा हम एक और तरह से कर सकते हैं। हमारे ताप बोध के पास पृथ्वी के बाहर से एक बहुत बड़ी खबर बड़े जोरों के साथ आ रही है, वह है धूप की गर्मी : यह खबर नौ करोड़ तीस लाख मील दूर की है। लेकिन आकाश के कोने-कोने में करोड़ करोड़ नक्षत्र फैले हुए हैं, इन में से कई तो सूर्य से भी लाखों गुना अधिक गर्म हैं। किन्तु हमारे सौभाग्य वश उनका सम्मिलित उत्ताप रास्ते में ही इस प्रकार मर जाता है कि विश्व-व्यापी इस अग्नि काण्ड से हमारा आकाश दुःसह नहीं हो जाता। कितनी दूरी का है यह रास्ता, कितना विशाल है यह आकाश। ताप की अनुभूति को स्पर्श करने वाली नौ करोड़ मीलों कि दूरी इसके सामने नितान्त तुच्छ है। बड़े बड़े यज्ञों में ब्राह्मण भोजन के लिये जो चूल्हे जलाये जाते हैं उनके पास बैठना सहज नहीं है, लेकिन सबेरे दस बजे के आस-पास शहर के रसोईघरों में जो आग जलती है उसकी गर्मी विशाल आकाश में फैल जाती है, इसी लिये हम शहर में वास कर सकते हैं। नहीं

तो सब आंच यदि इकट्ठा हो जाता तो हमारा वास करना ही मुश्किल हो जाता। नक्षत्र लोक की बात भी कुछ ऐसी ही है। वहाँ की आग की आंच जितनी भी प्रचण्ड क्यों न हो उसके चारों ओर का आकाश और भी बहुत विशाल है।

इस विराट् दूरी से भी नक्षत्रों के अस्तित्व का समाचार कौन ले आता है। सहज उत्तर है प्रकाश। किन्तु प्रकाश तो चुपचाप बैठ कर खबर नहीं सुना जाता, वह डाकहरकारे की तरह पीठ पर खबर लेकर दौड़ता चलता है। यह विज्ञान का एक जबर्दस्त आविष्कार है। चलना भी मामूली चलना नहीं, ऐसी तेज़ चाल विश्व-ब्रह्माण्ड में किसी दूसरे को नसीब नहीं। हम लोग इस छोटी पृथ्वी के आदमी हैं इसी लिये अबतक जगत् की सब से बड़ी तेज चाल की बात जानने का सुयोग हमें नहीं मिला। एक दिन यह खबर भी विज्ञानियों के आश्चर्यजनक करामात वाले यंत्र में पकड़ गई यह प्रकाश एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील के वेग से दौड़ता है। यह एक ऐसा प्रचंड वेग है जो अंक में तो लिख दिया जा सकता है, लेकिन मन में नहीं लाया जा सकता, जिसकी बुद्धि से तो परीक्षा होती है, लेकिन अनुभव से नहीं। प्रकाश की इस तेज़ दौड़ को अनुभव से समझने योग्य स्थान इस छोटी-सी पृथ्वी पर कहाँ है। इस थोड़ी-सी संकरी जगह में उसके चलने को हम नहीं चलने के समान ही देखते आ रहे हैं। परीक्षा करने योग्य स्थान महाशून्य में ही मिल सकता है। सूर्य उस महाशून्य में

जितनी दूरी पर वर्तमान है वह जितने करोड़ मील भी क्यों न हो, ज्योतिष्क लोक के पैमाने से बहुत अधिक नहीं है।

इसलिये इस दूरत्व के भीतर अपेक्षाकृत छोटे माप से मनुष्य ने प्रकाश का दौड़ना देखा। खबर मिली कि इस शून्य को पार करके पृथ्वी तक सूर्य के प्रकाश के आने में साढ़े आठ मिनट समय लाग जाता है। अर्थात् सूर्य जिस समय हमारे दृष्टि तक उपस्थित हुआ, वास्तव में उस से साढ़े आठ मिनट पहले ही आ गया था। इस आगमन की खबर देने में प्रकाश नामक हरकारे को आठ मिनट के क़रीब समय लग गया। इतनी देरी से कुछ विशेष नुकसान नहीं, यह तो प्रायः ताज़ी खबर ही मिली है। किन्तु सौरजगत् के सब से नजदीक जो नक्षत्र है, अर्थात् नक्षत्र लोक में जिसे हम अपने मुहल्ले का पड़ोसी कह सकते हैं, उसने जब खबर दी कि 'देखो, मैं यहाँ हूं', तो उसकी यह ख़बर यहाँ तक पहुंचा देने में प्रकाश को प्रायः चार साल से भी अधिक समय लग गया। अर्थात् अभी अभी जो खबर मिली वह चार साल की बासी है। यहीं लकीर खींच दी जाती तो काफी हो जाता किन्तु और भी अधिक दूरी पर नक्षत्र हैं जहां से प्रकाश के आने में लाखों बरस लग जाते हैं। आकाश में प्रकाश के इस आवागमन की खबर पाकर विज्ञान के सामने एक प्रश्न उठा—इसके चलने का ढंग कैसा है। यह भी एक अचरज की बात है। जवाब मिला है कि उसका चलना अत्यन्त सूक्ष्म तरंग की तरह है। फिर भी

बहुत मग़जपच्ची करके भी कुछ समझा नहीं जा सका है कि यह तरंग है किस चीज की, केवल प्रकाश के व्यवहार से इतना निश्चित जान लिया गया है कि है वह तरंग ही। लेकिन मनुष्य के मन को हैरान करने के लिये साथ ही साथ एक और भी जुड़वाँ समाचार अपनी तमाम गवाही साखी के साथ हाज़िर हुआ, उसने खबर दी कि प्रकाश असंख्य ज्योतिष्कण लिये हुए है : अति क्षुद्र झींसी के कणों की तरह उसका वर्षण हो रहा है। इन दो परस्पर विरुद्ध समाचारों का मिलन कहाँ होता है यह बात अब भी निश्चित नहीं हो सकी है। इस से अधिक अचरज में डालने वाली एक परस्पर विरुद्ध बात और है। वह यह कि, बाहर जो कुछ हो रहा है वह एक ऐसा कुछ है जो तरंग और वर्षा है, लेकिन भीतर जो कुछ हम पाते हैं वह न यह है न वह ; उसे हम प्रकाश कहते हैं ;—इसका मतलब क्या है, सो बात कोई पंडित अब तक बता नहीं सका है।

जिसे सोचा नहीं जा सकता, जो देखने-सुनने के बाहर है, उसके विषय में इतनी सूक्ष्म और इतनी विशाल खबर मिली कैसे, यह सवाल उठ सकता है। फिलहाल यह मान लेने के सिवा उपाय नहीं है कि इसके लिये निश्चित प्रमाण हैं। जो लोग ये प्रमाण संग्रह कर रहे हैं उन की ज्ञान की तपस्या असाधारण है, उनके सन्धान का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। उनकी बात को जाँच पड़ताल कर लेने लायक़ विद्या हम में से बहुतों के पास नहीं है। थोड़ी विद्या लेकर अविश्वास करके हमें स्वयं ठग जाना पड़े-

गा। प्रमाण के रास्ते खुले ही हुए हैं। उस रास्ते चलने की साधना यदि करोगे, शक्ति यदि होगी, तो एक दिन इन सब बातों को लेकर इन सब मामलों में सवाल-जवाब सहज ही हो सकेगा।

तब तक प्रकाश की तरंगों की बात ही समझ ली जाय। ये तरंगें केवल एक ही तरंग की धारा नहीं है। इनके साथ अनेक तरंगों ने दल बांधा है। कुछ तो दिखाई दे जाती हैं, और कुछ नहीं। यहाँ यह कह रखना ज़रूरी है कि जो प्रकाश दिखाई नहीं देता उसे बोलचाल की भाषा में प्रकाश नहीं कहते। किन्तु दिखाई दे या न दे, किसी एक शक्ति का इस प्रकार तरंगित रूप में चलना ही जब दोनों का स्वभाव है तो विश्वतत्त्व की पुस्तक में उनका (न दिखने वाली तरंगो का) अलग नाम देना अनुचित है। बड़ा भाई खूब नामी गरामी है और छोटे भाई को कोई नहीं जानता, तौभी वंशगत ऐक्य के कारण दोनों की उपाधि एक ही होती है, यह भी वैसा ही समझना चाहिये।

प्रकाश की तरंगों के अपने दल की एक और भी तरंग है। इसे हम आंखों से नहीं देखते, स्पर्श से समझते हैं। यह है ताप की तरंग। सृष्टि के कार्य में उसका खूब प्रताप है। इसी तरह के प्रकाश की तरंग की जात के कई पदार्थ हैं जिन में कई स्पर्श से जाने जाते हैं, कई स्पर्श से समझे जाते हैं, किसी किसी को हम स्पष्ट प्रकाश के रूप में जानते हैं और साथ ही ताप के रूप में अनुभव भी करते हैं और किसी को देख भी नहीं

सकते और स्पर्श से भी नहीं समझ सकते। हमारे निकट प्रकाशित-अप्रकाशित इन प्रकाश तरंगो की भीड़ को यदि एक ही नाम देना हो तो उसे तेज कहा जा सकता है। विश्वसृष्टि के आदि मध्य और अन्त में इसी तेज का कम्पन विभिन्न अवस्थाओं में छिपा हुआ है। पत्थर हो या लोहा, बाहर से देखने से जान पड़ता है कि उनके भीतर कोई हिलना-डुलना या आन्दोलन नहीं है। वे मानों स्थिरता की आदर्श-भूमि हैं। किन्तु यह बात सिद्ध हो चुकी है कि उनके अणु-परमाणु अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ जिन्हें हम देख नहीं सकते, लेकिन जिनके मिलित होने से ये बने हैं, सर्वदा भीतर ही भीतर काँप रहे हैं। जब ये ठंडे होते हैं तब भी काँपते हैं और कँपकँपी जब और भी तेज़ हो जाती है तब गर्म हो कर बाहर से ही हमारी बोध शक्ति के निकट प्रत्यक्ष हो जाती है, हम इसे अनुभव करने लगते हैं। आग में जलाने से लोहे के परमाणु काँपते-काँपते इतने अधिक अस्थिर हो उठते हैं कि उनकी उत्तेजना अधिक देर तक छिपी नहीं रहती। उस समय कम्पन की तरंग हमारे शरीर की स्पर्श नाड़ी को धक्का मार कर उसके भीतर जिस खबर को फैला देती हैं, उसे हम गर्मी कहते हैं। वस्तुतः गर्मी हमें चोट पहुंचाती है। प्रकाश चोट पहुंचाता है आंखों में और गर्मी शरीर में।

बचपन में एक दिन मास्टार साहब ने दिखाया था कि लोहे का टुकड़ा अग्नि में तपाने पर पहले गर्म होता है फिर खूब लाल और अन्त में उज्ज्वल स्वेत हो जाता है। मुझे खूब याद आ रहा

है कि उस दिन इस बात ने मुझे खूब सोचने को बाध्य किया था। मैं सोच रहा था कि आग तो कोई एक द्रव्य नहीं है जो लोहे के साथ बाहर से मिल कर लोहे के द्वारा इस प्रकार के नाना प्रकार के भाव बतलवा दे सके। लेकिन इतने दिन बाद आज सुनता हूं कि और भी अधिक ताप देने से यह लोहा गैस हो जाता है। और यह सब कुछ इसी जादूगर ताप की कार-साज़ी है, जो सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक चल रही है।

सूर्य का प्रकाश सफेद है। इस सफेद रंग में सात भिन्न-भिन्न रंग मिले हुए हैं। मानों कोई सतरंगा साज है जो समेट लेने पर सादा दिखता है और फैला देने पर सतरंगा। पुराने जमाने में झाड़ फानूस का प्रचार था, बिजली बत्ती के प्रचार से इसका अब देश-निकाला हो गया है। इस झाड़ में तिकोने कांचके टुकड़े झूला करते थे। इस तरह के तिकोने कांच के टुकड़ों का गुण यह है कि उनके भीतर से यदि धूप निकले तो उसके सात रंगों के प्रकाश टूट कर छितरा जाते हैं। और एक के बाद दूसरे रंग इस क्रम से बिछ जाते हैं; बैंगनी (violet) अति नील (indigo), नील (blue) हरा (green) पीला (yellow) नारंगी (orange) और लाल (red)। ये सात रंग आंखों से देखे जाते हैं; पर इनके दोनों किनारों पर और भी भिन्न भिन्न प्रकार के प्रकाश की तरंगें उठा करती हैं, जो हमारी सहज चेतना की पकड़ में नहीं आतीं। इस जातिका जो तेज बैंगनी रंग के उस पार है उसे ultra-violet light

कहते हैं। सहज भाषा में कह सकते हैं—बैंगनी-पार-का प्रकाश। और जो प्रकाश लाल के इलाके में नहीं आ सका, बल्कि उसके उधर ही रह गया है उसे कहते हैं, infra-red light इसे लाल-पार का प्रकाश कह सकते हैं। सर विलियम हर्शेल एक बहुत बड़े ज्योतिषी थे। उन्हों ने तिकोने कांच के टुकड़े के भीतर से परीक्षा करके प्रकाश की सतरंगी छटा देखी थी। उन्हों ने ताप-माप की नली ले कर एक एक रंग के पास रख कर देखा। फिर लाल रंग पार करके नली को रंग रहित अंधकार स्थान के पास ले गये। लेकिन वहां भी गर्मी रुकती नहीं दिखाई दी। उस समय समझा गया कि इस अंधकार में छिपा हुआ और भी कोई प्रकाश है। इस के बाद एक जर्मन रसायनी आये। एक फोटोग्राफी का प्लेट लेकर ये परीक्षा में जुट गये। इस प्लेट पर बैंगनी से लेकर लाल तक सात रंगों की खबर मिली। फिर उन्हों ने बैंगनी पार करके अंधकार स्थान की जाँच की। आखिरकार जो चीज़ आंख की पकड़ में नहीं आई थी वह प्लेट की पकड़ में आ गई। फोटोग्राफी के प्लेट में बैंगनी-पार-के प्रकाश का प्रभाव काफी प्रबल होता है। एक बार ऐसा जान पड़ा था कि ये अ-देख प्रकाश रंगीन दल के ही पार्श्वचर हैं जो अंधेरे में जा पड़े हैं। किन्तु ज्यों-ज्यों इस गुप्त प्रकाश की खोज आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों सतरंगे-दल का आसन छोटा होता गया। विज्ञान की पैमाइश में प्रकाश की सीमा आज सतरंगे राजा के देश से सौगुना अधिक बढ़ गई है। लाल-

पार-के प्रकाश की ओर क्रमशः जो तरंग दीख पड़ी है वही तरंग आज उस आकाश-वाणी को ढोती चलती है, जिस 'रेडियो-वार्ता' कहते हैं। इसी तरह बैंगनी-पार की ओर सुप्रसिद्ध रैन्ट-गेन प्रकाश प्रकट हुआ जिसकी सहायता से देह के चमड़े का पर्दा भेद कर भीतर का हाड़ दिखाई देता है।

प्रकाश से कुछ नक्षत्रों के अस्तित्व की ही खबर नहीं मिलती बल्कि उस की छाती फाड़कर मनुष्यने यह खबर भी वसूल कर ली है कि इन नक्षत्रों में कौन-कौन-से पदार्थ हैं। यह वसूली कैसे हुई, ज़रा समझा के कहा जाय—

तिकोने काँच के भीतर से जब सूर्य का सफेद प्रकाश निकलता है तो उसके एक के बाद दूसरे सात रंगों का परिचय मिल जाता है। लोहा वगैरः कठोर पदार्थ काफी गर्म हो कर जब जल उठते हैं और उनका रंग जब क्रमशः सफेद हो जाता है तो इस स्वेत प्रकाश को भाग करने पर सातों रंगों की छटा एक दूसरे से सटी हुई दिखने लगती है। उनके भीतर कोई फांक नहीं रहता। किन्तु लोहा को गर्म करते-करते जब वह इतना गर्म हो जाता है कि गैस बन जाय तो फिर तिकोने काँच के भीतर से उसके प्रकाश को भाग करने से वर्णच्छटा में अवि-च्छिन्न प्रकाश नहीं मिलता। अलग अलग केवल उज्ज्वल रेखायें और उनके बीच बीच में प्रकाशहीन खाली जगहें दिखती हैं। इस प्रकार रेखाओं का जो चिह्न पड़ जाता है उसे 'वर्णलिपि' नाम दिया जा सकता है।

इस लिपि में देखा गया है कि दीप्त गैसीय अवस्था में प्रत्येक पदार्थ के प्रकाश की वर्णच्छटायें अलग अलग हैं। नमक में सोडियम नामक एक मौलिक पदार्थ पाया जाता है, ताप दे-दे-कर उसे गैस कर दिया जाय तो उसकी वर्णलिपि में उसके प्रकाश के भीतर खूब नजदीक ही नजदीक दो पीली रेखायें दिखाई पड़ती हैं, और कोई रंग नहीं दिखाई देता। सोडियम के सिवा अन्य किसी पदार्थ की वर्णच्छटा में ठीक उसी स्थान पर उसी प्रकार को दो लकीरें नहीं मिलतीं। इस लिये उस प्रकार की दो लकीरें जहाँ कहीं के भी गैस में मिलें, समझ लेना होगा कि निश्चय ही वहां सोडियम मौजूद है।

लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि देखा जाय वर्णच्छटा में सोडियम गैस की इन दो उज्ज्वल पीत रेखाओं की चोरी हो गई है और उन की जगह पर काले धब्बे दिख रहे हैं। विज्ञानी कहते हैं कि किसी उत्तप्त गैसीय पदार्थ का प्रकाश उसी गैस के अपेक्षाकृत ठंडे स्तर को भेद करके जाता है तो नीचे का ठंडा स्तर उसे पूरी तौर से सोख लेता हैं। लेकिन यह बात नहीं है कि इस प्रकाश के अभाव में ही कुछ काले दागों की सृष्टि हुई हो। वस्तुतः जो गैस इस प्रकाश को रोकता है वह भी अपने उत्ताप के मुताबिक प्रकाश बिखेर देता है, लेकिन उत्ताप की कमी के कारण इस का प्रकाश कुछ मलिन होता है। यही मलिन प्रकाश वर्णच्छटा में उज्ज्वल प्रकाश के पास रहने के कारण काला मालूम होता है।

जितने भी मौलिक पदार्थ हैं, उनका प्रकाश तोड़ कर प्रत्येक की वर्णच्छटा का फर्द तैयार कर लिया गया है। इस वर्ण भेद की तुलना करने से ही वस्तु भेद प्रकट हो जायगा, फिर वह जहाँ कहीं भी क्यों न हो। हाँ, गैसीय अवस्था में उसका रहना ज़रूरी है।

पृथ्वी पर जिन ९२ मौलिक पदार्थों की खबर मिली है, सूर्य में उन सब का रहना उचित है; क्यों कि पृथ्वी तो सूर्य के देह से उत्पन्न हुई है। पहली परीक्षा में केवल ३६ ही पदार्थ मिले थे, बाकी का क्या हुआ, इस प्रश्न को भारतीय विज्ञानी मेघनाद साहा ने हल किया है। नया अनुसन्धान मार्ग निकाल कर उन्हों ने सूर्य में और कई मौलिक पदार्थों का पता लगाया है। उनके सुझाये रास्ते से प्रायः सभी मौलिक पदार्थों की खबर मिल गई है। आज भी जो लापता हैं उन का संवाद पृथ्वीका वायु मण्डल बीच रास्ते में ही रोक लेता है।

सब रंग मिल कर सूर्य का रंग सादा है फिर क्या कारण है कि हम नाना वस्तुओं में नाना रंग देखते हैं। बात यह है कि वस्तुयें सब रंगों को अपने भीतर ग्रहण नहीं कर सकतीं, किसी किसी को बिला उज्र बाहर विदा कर देती हैं। वह लौटाया हुआ रंग ही हमारी आंखों का लाभ है। मोटा ब्लाटिंग् पेपर जिस रस को सोख लेता है वह किसी का भोग्य नहीं होता, जिस रस को वह ले नहीं लेता वही बचा हुआ जूंठा रस हमारा प्राप्य है। यह भी ऐसा ही है। चुन्नी सूर्य के किरणों

के सभी रंगों को मान लेती है, फिरा देती है केवल लाल रंग को। उस के इस त्याग के दान से ही चुन्नी की इतनी शुहरत है। जो (रंग) उसने आत्मसात् कर लिया है उसकी कोई ख्याति नहीं। चुन्नी केवल लाल रंग को ही क्यों नहीं ग्रहण करती है और नीलम का नील रंग के ऊपर ही इतना विकट वैराग्य क्यों है, इस प्रश्न का जवाब उनके परमाणुओं की दुनिया में छिपा हुआ है। सूर्य के रंगों की तरंगों को पके केश लौटा देते हैं इसीलिये वे सफ़ेद दिखते हैं और काले केश किसी रंग को नहीं लौटाते इसी लिये वे काले हैं। जगत् की सभी चीजें अगर सूर्य के सब रंगों को ग्रहण कर जातीं, आत्मसात् कर लेतीं, तो कृपणों की वह दुनिया एक दम काली दिखाई देती अर्थात् दिखाई ही नहीं देती। मानों पोस्टमास्टर चिट्ठी बाँटने वाले सातों हरकारों को कैद कर लेता। और यदि ये पदार्थ किसी भी प्रकाश को ग्रहण न करते तो सब कुछ सफ़ेद दिखता, और उस एकाकार जगत् में सब पदार्थों का भेद ही मिट जाता। मानों सातों हरकारों की सब चिट्ठियाँ रस्सी की तरह बँट कर एक कर दी जातीं और कोई स्वतंत्र खबर ही न मिलती। सब को एक ही चेहरे में देखने को देखना नहीं कहा जा सकता, हम टूटे प्रकाश के मेल जोल में चीज़ों को देखते हैं।

पके केश सफ़ेद क्यों दिखाई देते हैं, यह सहज बात भी जो पूछने की चीज़ है, यह बात हामरे मन में आती भी नहीं। लेकिन छोटा, बड़ा, सहज, कठिन, सब बातों का जवाब तलब

करने के काम में विज्ञान लगा हुआ है। पके केश सफ़ेद हैं, इसीलिये सफेद दिखते हैं, इसी प्रकार की धोखा-भरी युक्ति दे कर हमारी बुद्धि ने अब तक मन को शान्त कर रखा था। विज्ञान ने कहा, यह उत्तर आरामजनक हो सकता है किन्तु सन्तोष-जनक नहीं है। बूढ़े आदमी के मस्तक पर कौन सी घटना घटती है और तब केश सफेद होने लगते हैं, इस बात की खोज करने के लिये बुद्धि को प्रायः साढ़े नौ करोड़ मील दौड़ाना पड़ता है। वहाँ अत्यन्त प्रकाण्ड और प्रचण्ड आग्नेय गैस के उत्स से जिस तेज की धारा चली आ रही है वह बूढ़े के केश में आ कर टकराई, और प्रतिक्षण उससे टकरा कर लौट आने लगी, इसी लौटते प्रकाश में केश सफेद दिखाई देने लगे। क्यों यह प्रकाश लौट आता है, मालूम नहीं। किन्तु यह अत्यन्त छोटी घटना विश्व के कितनी बड़ी घटना के साथ नित्य ही योग-युक्त है यह सोच कर अवाक् हो रहना पड़ता है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो सब से स्वतंत्र हो कर अपने आप घट रहा हो, जिस का हिसाब सारे ब्रह्माण्ड में कहीं भी न मिलता हो।

सूर्य-किरणों के साथ लिपटी हुई ऐसी अनेक तरंगे हैं, जो अति अल्प परिमाण में आती हैं और इसी लिये हम उन्हें अनु-भव नहीं कर सकते। ऐसी भी तरंगें हैं जो आती तो काफ़ी मात्रा में हैं पर पृथ्वी का वायुमण्डल उन्हें बीचही में रोक रखता है। नहीं तो हमें जल कर मर जाना पड़ता। सूर्य का जितना

दान हम बर्दाश्त कर सकते हैं, पहले से ही उसके साथ हमारे देहतन्त्र का समझौता हो गया है। उस के बाहर हमारी जीवन-यात्रा का कारबार बंद है।

इस विश्वरूपी चित्र में जो चीज़ सब से अधिक हमारी आंखों को आकृष्ट करती है वह है नक्षत्रलोक और सूर्य, जो स्वयं एक नक्षत्र है। इतने दिनों तक ये ही मनुष्य के मन में प्रधानता पाते आये हैं। वर्तमान युग में मनुष्य को सब से अधिक आश्चर्य में डाल दिया है इस विश्व के भीतर छिपे हुए विश्व ने, जो अतिशय सूक्ष्म है। यह आंखों से नहीं देखा जाता फिर भी वास्तव में समस्त सृष्टि के मूल में है।

एक मिट्टी के घर को ले कर यदि हम जाँच करें कि उस के मूल में क्या वस्तु है तो कुछ धूलके कण मिलेंगे। इन कणों को तोड़ने पर जब और टुकड़े नहीं हो सकेंगे तो हम कहेंगे कि ये कण ही मिट्टी के घर के मौलिक मसाले हैं। मनुष्य ने एक दिन ऐसा ही सोचा था। विश्व के पदार्थों के टुकड़े करते करते जब इतने सूक्ष्म टुकड़े हो जाँयगे कि उन्हें और अधिक न तोड़ा जा सके तो इन्हीं को विश्व के आदि भूत अर्थात् मौलिक सामग्री कहेंगे। हमारे शास्त्रों में इसे पर-माणु और यूरोपीय शास्त्र में आटम कहते हैं। ये इतने सूक्ष्म हैं कि दश करोड़ परमाणुओं को एक पर एक सजाने से उनका माप केवल एक इंच होता है।

सहज उपाय से धूल के कणों को हम अधिक भाग नहीं

कर सकते पर वैज्ञानिक तकाजा विश्व की सब सामग्री को और भी अधिक सूक्ष्म हिस्सों तक ले जा सका है। आखिर-कार हम ९२ अमिश्र पदार्थों तक पहुंचे हैं। पंडितों ने कहा है कि इन्हीं के योग-वियोग से संसार की सभी चीजें बनी हैं, इनकी सीमा को पार करने का उपाय नहीं।

मान लिया जाय कि मिट्टी के घरका एक अंश तो विशुद्ध मिट्टी से बना है और दूसरा मिट्टी में गोबर मिला कर। तो फिर दीवाल का चूर्ण करने पर दो तरह के कण मिलेंगे, एक तो विशुद्ध धूल के कण और दूसरे धूल के साथ मिले हुए गोबर का चूर्ण। इसी प्रकार विश्व की मूल वस्तुओं की जांच करके विज्ञानी लोगों ने दो श्रेणियों में भाग किया है, एक का नाम मौलिक और दूसरे का नाम यौगिक है। मौलिक पदार्थों में कोई मिलवट नहीं है लेकिन यौगिक पदार्थों में एकाधिक पदार्थ मिले हुए हैं। सोने के परमाणु मौलिक हैं, उसके जितने भी सूक्ष्म टुकड़े क्यों न किये जाँय सोने के सिवाय और कुछ नहीं मिलेगा। पानी यौगिक पदार्थ है उसे भाग करने पर दो मौलिक गैस निकल आते हैं, एक का नाम है आक्सीजन और दूसरे का हाईड्रोजन। ये दोनो गैस जब अलग अलग रहते हैं तो उन के गुण अलग तरह के होते हैं, पर ज्यों ही ये मिल कर जल हो जाते हैं, त्यों ही उनके पहचानने का कोई उपाय नहीं रह जाता, उनके मिलन से एकदम नया स्वभाव उत्पन्न होता है। सभी यौगिक पदार्थों का यही हाल है।

ये अपने भीतर अपने आदि पदार्थ के परिचय को गुप्त रखते हैं। जो हो, एक दिन यही आटम पदवीधारी परमाणुगण मूल उपादान कहलाने की कीर्ति के अधिकारी समझे जाते थे। सब ने कहा था, इन का टुकड़ा अब नहीं हो सकता। किन्तु अन्त में उनके भी टुकड़े हो गये। जिसे हमने परमाणु कहा था उसे तोड़ते-तोड़ते उसके भीतर अति परमाणु पाये गये। यह एक अपूर्व वस्तु है, इसे वस्तु कहने में भी संकोच होता है। समझा कर कहने की कोशिश करता हूं।

आज कल इलेक्ट्रिसिटी (बिजली) शब्द खूब चल पड़ा है इलेक्ट्रिक बत्ती, इलेक्ट्रिक पंखे और ऐसे ही अनेकों न जाने क्या-क्या। सभी जानते हैं कि यह एक प्रकार का तेज है। यह भी सभी जानते हैं कि मेघ में से आकाश में चमकने वाली विद्युत् भी इलेक्ट्रिसिटी के सिवा और कुछ नहीं है। यह विद्युत् ही पृथ्वी पर सर्वाधिक प्रबल पराक्रम के साथ आलोक और गर्जन के द्वारा इलेक्ट्रिसिटी की घोषणा करती है और शरीर पर लगने पर भयंकर हो उठती है। इलेक्ट्रिसिटी शब्द को हम हिंदी में वैद्युत कहेंगे।

इस वैद्युत की दो जातियाँ है। विज्ञानी लोगों ने एक जाति का नाम दिया है पज़िटिव् और दूसरी का नेगेटिव्।

अनुवाद किया जाय तो एक हुआ हाँ-धर्मो और दूसरा ना-धर्मी। इन का स्वभाव एक दूसरे के विरुद्ध है, इन्हीं दोनों विपरीतों को मिलाने से संसार में जो कुछ है वह सब हुआ है।

फिर भी पज़िटिव् के प्रति पज़िटिव् की और नेगेटिव् के प्रति नेगेटिव् की आसक्ति नहीं है। इनका आकर्षण विपरीत पक्ष की ओर ही होता है।

इन दो जातियों के अति सूक्ष्म कणों के झुण्ड मिल कर ही परमाणु हुए हैं। इन दो पक्षों को लेकर प्रत्येक परमाणु मानो सूर्य और ग्रहों के मिलित सौरमण्डल के समान है। सूर्य जिस प्रकार सौर-लोक के केंद्र में रह कर आकर्षण के लगाम से पृथ्वी को घुमा रहा है, पज़िटिव् वैद्युत कण भी उसी प्रकार परमाणु के केन्द्र से नेगेटिव् कणों को खींच रहा है और वे सर्कस के घोड़ों की तरह लगामधारी पज़िटिव् के चारों ओर चक्कर मार रहे हैं।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर नौ करोड़ मील दूरी रख कर चक्कर काट रही है। आयतन की तुलना करके देखा जाय तो अति परमाणुओं के कक्ष-पथ का दूरत्व अनुपात में उस से अधिक ही है, कम नहीं। परमाणु जिस अणुतम आकाश को अधिकार किये है, उसके भीतर भी दूरत्व की बहुत कमी-बेशी है। पहले ही नक्षत्रलोक में के वृहत्त्व और अति विशालता की बात कह चुका हूं, किन्तु अत्यन्त छोटे को भी 'अत्यन्त विशाल छोटा' कह सकते हैं। जिस प्रकार वृहत् विशालता की सीमा को संख्या चिह्न से घेरने पर एक के बाद बीस पच्चीस अंक बैठाने होते हैं, क्षुद्रतम विशालता के विषय में भी यह एक ही बात ठीक है। उस की संख्या की फौज भी लंबी क़तार

बाँध कर खड़ी होती है। परमाणु के अति सूक्ष्म आकाश में अति परमाणु गण जिस दूरी पर चक्कर मार रहे हैं उस की उपमा देते हुए एक विख्यात ज्योतिषी ने कहा है कि हावड़ा स्टेशन की और सब चीज़ें हटा कर केवल ५-६ वरें छोड़ दिये जांय तो उसी के साथ परमाणु के आकाश में स्थित अति परमाणुओं की तुलना हो सकती है। किन्तु इस व्यापक शून्य के भीतर कई दूरवर्ती चंचल पदार्थों को रोक रखने के लिये परमाणु के केन्द्र वस्तु का समस्त भार सारा कार्य कर रहा है। यह न होता तो परमाणु जगत् तहस-नहस हो जाता और परमाणुओं से गठित इस विश्वजगत् की हस्ती ही न रहती।

अब हाईड्रोजन गैस के परमाणुओं की दुनिया में दृष्टि दी जाय।

इस से अधिक हलका गैस दूसरा नहीं है। इस के परमाणु केन्द्र में केवल एक वैद्युत कण विराज रहा है जिस की जाति को प्रोटन कहते हैं और इसी के आकर्षण में बद्ध हो कर एक छोटी सी कणिका उसके चारों ओर चक्कर मार रही है, इस की जाति को इलेक्ट्रन कहते हैं। प्रोटन पज़िटिव-धर्मी है, इलेक्ट्रन नेगेटिव-धर्मी। नेगेटिव इलेक्ट्रन चटुल-चञ्चल है और पज़िटिव प्रोटन धीर-गंभीर। इलेक्ट्रन के वज़न की तो कुछ गिनती ही नहीं, परमाणु का समस्त भार उसके केन्द्र वस्तु में जमा हुआ है।

मोटी तौर पर सब इलेक्ट्रन ही ना-धर्मी हैं, परन्तु एक

जाति के ऐसे भी इलेक्ट्रन गिरफ्तार किये जा सके हैं जो हाँ-धर्मी हैं, फिर भी इनका वज़न इलेक्ट्रन के समान ही है। इन का नाम रखा गया है पाज़िट्रेन।

पहले ही बता चुका हूं कि दो विपरीत-धर्मी वैद्युतों में परस्पर साठगाँठ रहती है; परमाणु केन्द्र के प्रोटन अपने कक्ष-पथ के इलेक्ट्रनों को खींच कर परस्पर मिल जा सकते थे पर इस लिये मिल नहीं पाते कि इलेक्ट्रन के दौड़ने का जो प्रचण्ड वेग है वही प्रोटन के आकर्षण के जोर को एक सीमा में रोक रखता है, मर्यादा का उल्लंघन नहीं होने देता। इलेक्ट्रन के दौड़ने का वेग प्रति सेकेंड १३५० मील है। सूर्य और पृथ्वी में भी यही व्यवहार है। पृथ्वी के दौड़ने का वेग अगर अत्यन्त अधिक बढ़ जाय तो वह सूर्य के आकर्षण से अपने को छिटका कर छूट भागे और अगर दौड़ने का वेग अत्यन्त शिथिल हो जाय तो सूर्य ही उसे हड़प ले। परमाणुलोक में दौड़ने के आकर्षण का जो नियम बंधा है उस से इलेक्ट्रन मंडली से बाहर निकल कर नहीं जा सकता और फिर प्रोटन भी इलेक्ट्रन के प्रदक्षिणपथ की मर्यादा की रक्षा करता रहता है।

कभी कभी देखा गया है कि एक विशिष्ट प्रकार के हाईड्रोजन का परमाणु साधारण परमाणुओं से दूना भारी है। परीक्षा करके देखा गया कि केन्द्र में प्रोटन के साथ उसका एक और सहयोगी भी है। पहले ही कहा गया है कि प्रोटन हाँ-धर्मी होता है। उसके केन्द्र का जो साझेदार है उसकी जाँच

करने से मालूम हुआ कि वह साम्यधर्मी है, न हाँ-धर्मी और न ना-धर्मी। इसी लिये उस में कोई वैद्युत धर्म नहीं है। उसका वज़न अपने संगी प्रोटन के बराबर ही है किन्तु प्रोटन जिस प्रकार इलेक्ट्रन को खींचता है, यह वैसा खींच नहीं सकता, और फिर प्रोटन को धक्का मार कर गिरा देने की कोशिश भी नहीं करता। इस कण का नाम न्यूट्रन रखा गया है। ऐसा भी हाईड्रोजन पाया गया है जिसका वजन तीन गुना अधिक है। अर्थात् उसके परमाणु में एक प्रोटन और दो न्यूट्रन हैं। एक बात लक्ष्य कर के देखी गई है कि एक प्रोटन केवल एक ही इलेक्ट्रन पर शासन रख सकता है। अन्य जाति के कणों की बाँट से परमाणु को जितना भारी भी क्यों न कर दिया जाय, इलेक्ट्रन के ऊपर उसका जोर नहीं चलता। परमाणु के केन्द्र में प्रोटन की संख्या जिस परिमाण में अधिक होगी उसी परिमाण में वे इलेक्ट्रन को वश में रख सकते हैं। आक्सिजन गैस के परमाणु के केन्द्र में आठ प्रोटन रहते हैं, और साथ में आठ न्यूट्रन भी रहते हैं, किसी किसी जगह दस-दस, किन्तु तौभी प्रदक्षिणकारी इलेक्ट्रनों की संख्या ठीक आठ ही रहती है।

पज़िटिव और नेगेटिव जहाँ पर यथा-परिमाण मिल कर संधि करके शान्ति पूर्वक रह रहे है वहाँ यदि किसी उपाय से गृह-विच्छेद घटा दिया जाय, अर्थात् कुछ नेगेटिवों को निकाल बाहर किया जाय तो वह वस्तु वैद्युत के परिमाण के हिसाब से बेमेल

हो जायगी और पज़िटिव वैद्युत का चार्ज अतिरिक्त हो उठेगा। स्त्री पुरुष मिल कर जहां गृहस्थी सामंजस्य पूर्ण ढंग से चला रहे हैं, वहाँ से स्त्री का प्रधान्य जिस परिमाण में हटा दिया जायगा उसी परिमाण में वह गृहस्थी पुरुष-प्रधान हो उठेगी, यह भी वैसा ही है।

इलेक्ट्रिसिटी के प्रसंग में यह 'चार्ज' शब्द सदा व्यवहार किया जाता है। साधारणतः जिन चीजों को हम व्यवहार में लाते हैं उन में वैद्युत की छटफटाहट नहीं देखी जाती, वे चार्ज किये हुए नहीं हैं, अर्थात् दो जाति के वैद्युत जिस परिमाण में परस्पर मिलजुल कर शान्ति पूर्वक रहा करते हैं, वह परिमाण इन में है। किन्तु किसी चीज में कोई एक वैद्युत यदि संधि न मान कर, अपने निर्दिष्ट परिमाण को अतिक्रम करे और मर्यादा मानना न चाहे तो उस वैद्युत के द्वारा वह वस्तु चार्ज की गई है, ऐसा कहा जाता है।

एक टुकड़ा रेशम लेकर कांच पर रगड़ा गया। नतीजा यह हुआ कि रगड़ पा कर काँच में से कुछ इलेक्ट्रन निकल आये, उनकी रफ्तनी हुई रेशम में। काँच में नेगेटिव् के कम होते ही पज़िटिव की प्रधानता हो गई, उधर रेशम में नेगेटिव वैद्युत का प्रभाव बढ़ गया, अब यह नेगेटिव वैद्युत के द्वारा चार्ज कर दिया गया। काँच में इलेक्ट्रिक की कमी पड़ गयी थी, उसने अपने पजिटिव चार्ज के झोंक में रेशम को खींच लेना चाहा, उधर नेगेटिव की भीड़ वाले रेशम का खिंचाव

काँच की ओर हुआ। काँच या रेशम का साधारण तंत्र जब अक्षुण्ण था, तब तक वे अपने आप में ही सहज थे, शान्त थे। शान्त अवस्था में इन में वैद्युत का अस्तित्व ज्ञात ही नहीं होता था। ज्यों ही बाहर के वैद्युतिक गृह-विप्लव की खबर मालूम हो गई त्यों ही भाग बँटवारे की असमानता ने क्षोभ पैदा कर दिया।

काँच या अन्य किसी पदार्थ से रगड़ के द्वारा मामूली परिमाण में इलेक्ट्रन निकाल लेने की बात मैं ने कही है। यदि विज्ञानी से पूछो कि यह परिमाण कितना है तो वे गर्दन हिला कर कहेंगे, रगड़ की मात्रा के अनुसार चालीस, पचास, साठ करोड़ तक हो सकता है। बिजली बत्ती के पलीते के तार में से जब इलेक्ट्रन की ठसाठस भीड़ दौड़ती रहती है तभी वह जलता है। उसके इस प्रान्त से उस प्रान्त तक जितने इलेक्ट्रन एक साथ यात्रा करते हैं उस संख्या का हमारे गणितशास्त्र में क्या नाम है, यह बात मैं तो नहीं जानता। जो हो, यह देखा गया कि अति परमाणुओं का दुरन्त चाञ्चल्य पज़िटिव और नेगेटिव की सन्धि से संयत हो रहा है, इसी लिये इस विश्व में शान्ति है। भालू वाला मदारी डमरू बजाता है और उस के प्रत्येक ताल पर भालू नाचता और नाना खेल दिखाता है। यदि डमरू वाला न हो, और पालतू भालू यदि बंधन तोड़ कर अपने स्वधर्म में आ जाय तो फिर काट कर और नोंच कर चारों ओर अनर्थ कर डाले। हमारे सारे शरीर में और देह के बाहर भी इस पालतू विभीषिका के द्वारा किसी अदृश्य डमरू के छन्द (ताल) पर सृष्टि

का नाच और खेल चल रहा है। सृष्टि के अखाड़े में दो खिलाड़ी खेल रहे हैं और अपने भीषण द्वन्द्व के समन्वय से विश्वचराचर की रंगभूमि को गर्म कर रखा है।

सुविख्यात अंग्रेज विज्ञानी रदरफोर्ड ने परमाणु रहस्य को सौर मण्डली के साथ तुलनीय करके बताया कि परमाणु को घेर कर भिन्न भिन्न चक्र-पथ (कक्ष-मार्ग) में इलेक्ट्रनों के दल चक्कर काट रहे हैं। एक और पंडित ने साबित किया कि चक्कर मारने वाले इलेक्ट्रन कक्ष पथ से कूद कर दूसरे कक्ष पथ में जा कर स्थान बदला करते हैं, और फिर अपने निर्दिष्ट रास्ते पर लौट आते हैं। इस उछल कूद के समय ही उनमें से किरण विकीर्ण होती हैं। सूर्य के परमाणु या जलता हुआ पलीता इस कूदने वाले इलेक्ट्रन की चमक से ही प्रकाश फेंकते हैं। अन्त में एक गणित विज्ञानी ने सिद्ध किया कि इन कूदने वाले और चक्कर मारने वाले इलेक्ट्रनों की गति में एक प्रकार की तरंग काम करती है। इस प्रकार कूदने, छिटकने और लहराने के बोधातीत व्यापार को ले कर परमाणु की स्थिति है।

पहले ही बता चुका हूं कि एक समय के विज्ञानी लोगों ने खूब दृढ़ता के साथ ही घोषित किया था कि ९२ आदि भूत ही विश्वसृष्टि के मौलिक पदार्थ हैं, अति परमाणुओं की साखी ने इस बात को अप्रमाणित कर दिया, तौभी उनके सम्मान की उपाधि आज भी रह गई है, हम आज भी उनको मौलिक पदार्थ ही कहते हैं।

एक ऐसा भी समय था जब कि इन मौलिक पदार्थों के संबन्ध में यह मशहूर था कि उनके गुणों में नित्यता है। उन्हें जितना भी क्यों न तोड़ा जाय उनका स्वभाव नहीं बदलता। विज्ञान के नये अध्याय में देखा गया कि उनका चरम भाग किया जाय तो दो जाति के वैद्युतों का युग्म-नृत्य निकल पड़ता है। जिन्हें मौलिक पदार्थ कहा गया है उनके स्वभाव के विशेषत्व को इन्हीं वैद्युतों ने विशेष संख्या में एकत्र हो कर बचा रखा है। अगर यहीं रुका गया होता तोभी परमाणुओं के रूप-नित्यता की शुहरत टिक जाती। किन्तु उनके अपने दल से ही विरुद्ध गवाही मिली है। देखा गया है कि जो परमाणु हलके हैं उनके भीतर इलेक्ट्रन और प्रोटन का चक्कर मारना नित्य नियमित भाव से ही चला आ रहा है। किन्तु जो अत्यन्त भारी है, जिन में न्यूट्रन प्रोटन संघ की ठसाठस भीड़ बहुत अधिक है, जैसे यूरेनियम या रेडियम, वे अपनी पूंजी सम्हाल नहीं सकते। सदा सर्वदा ही उनकी मूल पूंजी छिटकती रहती है और हलके हो कर वे एक रूप से दूसरा रूप धारण करते रहते हैं।

अब तक रेडियम नामक एक मौलिक धातु स्थूल आवरण में छिपा हुआ था। उसके आविष्कार के साथ ही साथ परमाणु का गूढ़ रहस्य मालूम हो गया। विज्ञानियों के साथ उसका जो पहला मुकाबिला हुआ उसका इतिहास याद रखने लायक़ है।

हाँरी बेकरैल पैरिस म्यूनिसिपल स्कूल में विज्ञान के अध्या-

पक थे। एक दिन संयोग वश उन्हों ने अपनी प्रयोगशाला में एक टुकड़ा यूरेनियम धातु एक फोटोग्राफी के प्लेट पर रख दिया था। दो सप्ताह बाद वही प्लेट ले कर उन्हों ने अपने सहकारी को उस का चित्र लेने के लिये दिया। देखा गया कि प्लेट के बीच में काफी बड़ा एक प्रकाश का चिह्न पड़ा हुआ है। यूरेनियम के टुकड़े से ही अदृश्य प्रकाश विकीर्ण हो कर प्लेट पर गिरफ्तार हुआ है। इस बात को निस्सन्देह प्रमाणित किये बिना वे कोई मत स्थिर न कर सके। उस समय वे अन्य प्रयोगों में उलझे हुए थे। इस लिये इस प्रयोग की परीक्षा का भार उन्हों ने अपनी असामान्य बुद्धिमती छात्री मैडम कुरी के ऊपर दिया। यह महिला फ्रांसीसी विज्ञान-विद्यालय में अपने पति अध्यापक पियर कुरी की सहयोगिनी हो कर प्रयोग-परीक्षा का काम करती थीं। दोनो पति-पत्नी मिल कर इस अज्ञात धातु की खोज में लग गये। कफी रुपये की जरूरत थी, फिर भी ये कर्ज लेने में कुंठित नहीं हुए। अष्ट्रिया से २६ मन का एक धातु पिण्ड खरीद लाये, इसे पिचब्लेंड कहते हैं। यूरेनियम एक विमिश्र खनिज पदार्थ है। पती-पत्नी इसके शोधन और विश्लेषण के कार्य में जुट गये। प्रातःकाल से ले कर आधी रात तक काम करते करते साल गुज़र गया। सांसारिक बाधायें भी कम नहीं आईं। अन्त में परीक्षा की प्रणाली से खनिज वस्तु जब घिसते-घिसाते इतना सूक्ष्म हो गया कि खुर्दबीन बिना देखा न जा सके, तब एक दिन सायंकाल अपनी प्रयोगशाला में प्रवेश

करके देखा कि परीक्षा से बचे हुए उस पदार्थ से दीप्ति निकल रही है। इस उज्ज्वल पदार्थ के भीतर से मैडम कुरी ने विशुद्ध रेडियम के कई दाने चुन लिये। और भी पाँच वर्ष तक सन्धान और आलोचना करने के बाद अन्त में उन्हों ने रेडि-यम के संबन्ध में लिखी हुई अपनी रचना परीक्षक-समिति के हाथ में दिया। शीघ्र ही सारे संसार में यह विस्मयकर समाचार घोषित हुआ। उन दिनों सब से अधिक विस्मय जिस बात से हुआ वह था इस धातु का अद्भुत स्वभाव। यह अपने आप में से ज्योतिष्कणा विकीर्ण कर अपने को नाना मौलिक पदार्थ में रूपान्तरित करता हुआ आखिरकार सीसा हो जाता है। इसे मानों एक वैज्ञानिक इन्द्रजाल कह सकते हैं। यह बात पहले पहल जानी गई कि एक धातु से दूसरे धातु का उद्भव हो सकता है।

जो पदार्थ रेडियम की जाति के हैं, अर्थात् तेज छिटकाना ही जिन का स्वभाव है, वे सभी जाति खो देने वाले दल के हैं। वे बराबर ही अपने तेज का मूल धन खर्च करते रहते हैं। इस अपव्यय की सूची में जो तेज पदार्थ पहले पड़ता है, उसका नाम ग्रीक वर्णमाला के प्रथम अक्षर के नाम पर आल्फ़ा दिया गया है। हिंदी वर्णमाला के हिसाब से उसे क कह सकते हैं। यह पजि़टिव जाति का एक परमाणु है। नवीन उद्भावित एक यंत्र के आकाश में जब इसे दौड़ाया गया तो उस यंत्र की भीगी हवा के कणों को प्रबल वेग से आघात पहुंचा कर इसने

जला दिया। यह जो रास्ता जल उठा उसी के मार्ग में उसके परिचय की लेखन-रेखा अंकित हो गई। छिटका कर फेंकी हुई तेज की एक और कणा है, इसका नाम दिया गया है बीटा, हिंदी में ख कह सकते हैं। यह नेगेटिव चार्ज किया हुआ इलेक्ट्रन है। इस का वेग प्रचण्ड है। चलने के रास्ते में एक पतला कागज़ रख देने से आल्फा परमाणु का देहान्तर लाभ होता है, अर्थात् वह हीलियम गैस बन जाता है। बीटा को रोकने के लिये दो कागज़ लगते हैं। रैडियम के तूणीर में इन दो के सिवा एक और वस्तु है। उसका नाम है गामा। यह परमाणु या अति परमाणु नहीं है, एक विशेष प्रकार की प्रकाश-रश्मि है। उसकी किरण स्थूल वस्तु को भेद सकती है, जैसा कि रैन्टगेन रश्मि करती है।

परमाणु के पिण्ड में जब तक कोई नुकसान नहीं होता तब उसकी विशेषता अव्याहत रहती है। उसके सीमान्त से यदि दो चार इलेक्ट्रन छीन लिये जाँय तो उसके के निर्दिष्ट वैद्युतों की संख्या में कुछ कमी पड़ सकती है किन्तु यह कमी घातक नहीं होती। यदि उसके केन्द्रवस्तु के ख़ास ख़ज़ाने में लूट-पाट सम्भव हो तभी उस परमाणु की जाति बदल सकती है। दृष्टान्त दिखाया जाय। एक गैस के आधार में केवलमात्र नईट्रोजन था। उस में आल्फ़ा कणिका दौड़ाई गयी ; इस ने नाईट्रोजन परमाणु के केन्द्र वस्तु में धक्का मारा। उसकी प्रोटन संस्थिति हिल गई, इस प्रकार वह हाईड्रोजन और अक्सिजन

गैस में रूपान्तरित हो गया। कैसे हुआ वह भी बता दूं। आल्फा कणिका के प्रचण्ड आघात से नाईट्रोजन के केन्द्र में स्थित प्रोटन-संस्थिति से एक प्रोटन छिटक कर बाहर निकल गया। आल्फा-कणा ने उसे हटा तो दिया किन्तु स्वयं जा फंसी उनके दल में। इससे उनका वज़न बढ़ गया और वे दो गैसों का रूप धारण कर गये।

इसी लिये विज्ञानियों ने पहले आशा की थी कि तेज का वार करने वाले इस रेडियम गोलंदाज़ को परमाणु केन्द्र की पूंजी लूटने की राहज़नी में नियुक्त करेंगे। लेकिन लक्ष्य बहुत सूक्ष्म है और निशाना मारना सहज नहीं है। तेज के अनेक ढेले मारने के बाद संयोग वश एक लग गया तो लग गया। इसी लिये इस प्रकार की अनिश्चित लड़ाई के बदले आज कल विशाल यंत्र तैयार करने का आयोजन चल रहा है, ताकि अति प्रचण्ड शक्तिशाली वैद्युत पैदा हो कर परमाणु के केन्द्र दुर्ग के दुर्भेद्य पहरे को भेद सके। वहां प्रबल प्रचण्ड शक्ति का पहरा है। आज जिस समय लाख-लाख मनुष्यों को मारने के लिये सहस्रघ्नी यंत्रों का उद्भावन हो रहा है ठीक उसी समय विश्व के सूक्ष्मतम पदार्थ के अलक्ष्यतम मर्म को विदीर्ण करने के लिये विराट् वैद्युत-वर्षणी का कारखाना बनने जा रहा है।

पहले ही कहा है कि आल्फा कणा स्वरूप खो कर के हीलियम गैस हो जाती है। इसको पृथ्वी की उमर तै करने के

काम में लगाया गया है। किसी पहाड़ के एक पत्थर में यदि मामूली मात्रा में भी हीलियम गैस पाया जाय तो इस गैस की परिणति में जो निर्दिष्ट समय लगता है उस का हिसाब कर के उस पहाड़ की जन्म कुण्डली तैयार की जा सकती है। इसी प्रणाली से पृथ्वी की उमर का विचार किया गया है।

वज़न के भारीपन में हाईड्रोजन गैस के ठीक ऊपर के खाने में जो गैस है उस का नाम हीलियम गैस रखा गया है। यह गैस विज्ञानियों की दुनिया में नया ही जाना गया है। यह पहले पहल सूर्य ग्रहण के समय मालूम हुआ था। सूर्य अपने चक्र की सीमा अतिक्रम कर के लाखों कोस दूर तक जलते हुए वाष्प का अति सूक्ष्म उत्तरीय चादर (चादर) उड़ाया करता है, जिस प्रकार झरना अपने चारों ओर जलकण का कुहरा फैला देता है। इसी लिये ग्रहण के समय दूरबीन से उसके चारों ओर के आग्नेय गैस का विस्तार दिखाई पड़ता है। इस दूरविक्षिप्त गैस की दीप्ति को यूरोपीय भाषा में करोना कहा जाता है, हिंदी में इसे किरीटिका कह सकते हैं।

कुछ दिन पहले सन् १८३७ ई० के सूर्य ग्रहण का सुयोग पा कर जब इस किरीटिका की परीक्षा की गई तो उस समय वर्ण लिपि की नील सीमा की ओर तीन अज्ञात सफेद लकीरें दिखाई दीं। पंडितों ने सोचा कि खूब संभव यह कोई आगे का जाना हुआ ही पदार्थ है जो अधिक जलने के कारण नई

दशा को प्राप्त हो गया है, और यह उसी का चिह्न है। या बहुत संभव, कोई नया पदार्थ ही जाना गया। अब भी उसका कुछ पता नहीं चला।

सन् १८६८ ई० के ग्रहण के समय भी विज्ञानियों को एक ऐसा ही आश्चर्य हुआ था। सूर्य के गैस के घेरे में से एक ऐसे पदार्थ की लिपि प्राप्त हुई जिसे तब तक कोई जानता नहीं था। इस नये जाने हुए पदार्थ का नाम दिया गया हीलियम अर्थात् सौरक ; क्यों कि उस समय सोचा गया था कि यह गैस अकेले सौरमण्डल में ही है। बाद को १० वर्ष बीत जाने पर विख्यात विज्ञानी रैमजे ने इस गैस के अस्तित्व का पता अति सामान्य मात्रा में पृथ्वी के वायुमण्डल में पाया। उस समय स्थिर हुआ कि यह गैस पृथ्वी पर दुर्लभ है। इस के बाद देखा गया कि दक्षिण अमेरिका के किसी मिट्टी के तेल के खदान में जो गैस पाया जाता है उस में हीलियम काफी मात्रा में मिलता है। फिर तो इसे काम में लगाने में सुबिधा हुई। अत्यन्त हल्का होने के कारण बहुत हाल तक हाईड्रोजन गैस ही हवाई जहाज़ उड़ाने के काम में लाया जाता था। लेकिन हाईड्रोजन गैस उड़ाने के लिये जिस प्रकार आसानी से काम देता है, जला देने में भी उस से कम नहीं है। इस गैस ने अनेक बड़े बड़े हवाई जहाजों को जला कर राख कर दिया है। हीलियम गैस में उस छिपी हुई प्रचण्ड ज्वलन-चण्डी का निवास नहीं है। हाईड्रोजन को छोड़ कर अन्य सभी गैसों से

यह अधिक हल्का है। इसी लिये जहाज़ उड़ाने के काम को निरापद बनाने के लिये अब इसी का व्यवहार होने लगा है। चिकित्सा के लिये भी किसी किसी रोग में इस का प्रयोग शुरू हुआ है।

पहले ही बताया गया है कि पज़िटिव चार्ज वाले और नेगेटिव चार्ज वाले पदार्थ परस्पर एक दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं। लेकिन एक ही जाति के चार्ज वाले पदार्थ एक दूसरे को ठेल कर फेंक देना चाहते हैं। उन्हें जितना ही नज-दीक किया जाता है उनके ठेलने का वेग उतना ही उग्र हो उठता है। इसी प्रकार विपरीत चार्ज वाले परस्पर जितने ही नजदीक आते जाते हैं उतना ही उनके आकर्षण का ज़ोर बढ़ता जाता है। इसी लिये जो इलेक्ट्रन केन्द्र वस्तु के पास रहते हैं वे आकर्षण के वेग से बचने के लिये और तेजी से दौड़ा करते हैं। सौर मण्डल में भी जो ग्रह सूर्य के जितने ही निकट हैं वे उतने ही तेज़ दौड़ते हैं। दूर के ग्रहों को विपत्ति का डर कम रहता है, वे बहुत कुछ धीर भाव से, इत्मीनान के साथ, चलते हैं।

दो प्रोटनों की पारस्परिक विमुखता का ज़ोर समझाने के लिये रसायनिक पंडित फ्रेडरिक साडी ने हिसाब लगा कर बताया है कि यदि पृथ्वी के एक मेरु पर एक ग्राम प्रोटन रखा जाय और दूसरे मेरु पर और एक ग्राम तो इस चार हजार मील की दूरी को अतिक्रम करके उनके धक्का मारने का ज़ोर प्रायः ६ सौ मन के दबाव के बराबर होगा। अगर यही विधान हो तो यह

समझना मुश्किल है कि परमाणु केन्द्र की अति संकीर्ण सीमा में एक से अधिक प्रोटन किस प्रकार मिलजुल कर रह सकते हैं। इस नियम के अनुसार हाईड्रोजन (जिस के केन्द्र में केवल एक प्रोटन का एकच्छत्र राज्य है) को छोड़ कर विश्व का और कोई पदार्थ तो टिक ही नहीं सकता; और फिर विश्व जगत् तो हाईड्रोजनमय ही हो उठता।

इधर हम देखते हैं कि यूरैनियम धातु में ९२ प्रोटन और १४६ न्यूट्रन हैं। यह ठीक है कि इतनी बड़ी भीड़ वह सँभाल नहीं सकता, प्रतिक्षण अपने केन्द्र भाण्डार से प्रोटन और न्यू-ट्रन का बोझा हलका करता रहता है। भार जब कुछ कम हो जाता है तो वह रेडियम का रूप ग्रहण करता है, और भी कम होने पर पलेनियम और सब से अन्त में सीसा का रूप धारण करके स्थिति पाता है।

वजन में इतना काट छाँट करके भी वह किस प्रकार स्थित रहता है, यह सन्देह तो दूर नहीं हुआ। विकिरण का कर्तव्य करके भी सब कुछ कट छँट जाने के बाद सीसे के हक़ में ८२ प्रोटन बच रहते हैं। पज़िटिव वैद्युत का धक्कामार स्वभाव पा कर भी ये प्रोटन किस प्रकार परमाणु लोक की शान्ति रक्षा करते हैं, इस सवाल का अच्छा जवाब बहुत दिनों तक की जाँच के बाद भी नहीं मिला। केन्द्र के बाहर तो इनका झगड़ा मिटता नहीं, लेकिन केन्द्र के भीतर इन की मित्रता अटूट है, यह एक विषम समस्या है।

इस रहस्य को भेदने के लिये यंत्र शक्ति का बल बढ़ाया गया। परमाणु के केन्द्रगत प्रोटन रूपी लक्ष्य के विरुद्ध परीक्षकों ने प्रोटनों की पल्टन लगा दी। जिस संख्या में वैद्युत शक्ति उन्हें धक्का दे कर चलाने लगी, उस से प्रोटनों में प्रति सेकेन्ड ६७२० मील की गति मिली। तोभी केन्द्रस्थित प्रोटन गण अपने प्रोटन धर्म की रक्षा करते रहे, आक्रमणकारी प्रोटनों को धक्का मार कर फेंक दिया। ताड़ना शक्ति का वेग और बढ़ा दिया गया। विज्ञानियों ने गति का वेग बढ़ा कर ७७०० मील प्रति सेकेन्ड कर दिया, शिकार फिर भी हार मानने को राज़ी नहीं हुआ। अन्त में ८२०० मील वेग का धक्का मारने पर विरुद्ध शक्ति में कुछ नर्म पड़ने के लक्षण दिखे। धकियाने वाली शक्ति की मेड़ लाँघ कर आक्रमणकारी शक्ति केन्द्र-दुर्ग के भीतर पहुंची। देखा गया कि एक प्रोटन के अन्य प्रोटन के जितना निकट पहुंचने पर उनकी परस्पर को धक्का देने वाली प्रवृत्ति जाती रहती है, वह निकटता है एक इंच के १,२०,००,००,००,००,००० वें हिस्से पर सटकर रहना। तो इस से यह मान लेना पड़ेगा कि उतने सामीप्य पर प्रोटनों में परस्पर को ठेल फेंकने की जो शक्ति है उस से कहीं अधिक शक्ति है परस्पर को आकर्षित कर रखने की। महाकर्ष (आकर्षण) शक्ति की अपेक्षा इसका जोर कई गुना अधिक है। वह शक्ति परमाणुओं की दुनिया में प्रोटन को जिस प्रकार आकृष्ट करती है उसी प्रकार न्यूट्रन को भी, अर्थात् जिस के ऊपर वैद्युत का चार्ज है और

जिन के ऊपर नहीं है, इन दोनों ही पर उसका समान प्रभाव है। परमाणु केन्द्रवासी यह अति प्रबल आकर्षण शक्ति समस्त विश्व को बाँधे हुए है। जिस शासन ने परमाणुओं के घरेलू झगड़े को मिटा रखा है उसी के प्रताप से विश्व में शान्ति विराजमान है।

आधुनिक इतिहास से इसकी एक उपमा संग्रह कर दी जाय। चीन रिपब्लिक की शान्ति नष्ट कर के कुछ एकाधिपत्य लोलुप जेनरल आपस में लड़ाई करके देश को मिट्टी में मिला रहे थे। राष्ट्र के केन्द्र स्थल में इस विरुद्ध दल से अधिक प्रबल शक्ति अगर होती तो शासन के कार्य में इन सब को एक कर के राष्ट्र शक्ति को बलिष्ट और निरापद रखना सहज होता। परमाणु के राष्ट्रतन्त्र में वह बड़ी शक्ति सब शक्ति के ऊपर है, इसी लिये जो स्वभावतः नहीं मिलते वे भी मिल कर विश्व की शान्ति रक्षा कर रहे हैं। इस से मालूम होता है कि विश्व की शान्ति नामक पदार्थ भलमनसी की शान्ति नहीं है। जितने सब उद्दण्ड हैं उन्हें मिला लिया गया है तब कहीं जा कर एक प्रबल मेल संभव हुआ है। जो स्वतन्त्र भाव से सर्वनाशकारी हैं वही मिलित हो कर सृष्टि के वाहन बने हुए हैं।

वैद्युत सन्धानी गण जब अपने कार्य में नियुक्त थे, उसी समय उनके हिसाब में गोलमाल पैदा कर के एक अज्ञात शक्ति का अस्तित्व मालूम हुआ। उसके विकिरण को महा जागतिक रश्मि या कस्मिक रश्मि नाम दिया गया। इसे हम आकस्मिक

रश्मि कह सकते हैं। कहाँ से यह शक्ति आ रही है, कुछ समझ में नहीं आया पर इसे देखा गया सर्वत्र। ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई जीव नहीं जिस के ऊपर इसका हस्तक्षेप नहीं चलता। यहाँ तक कि धातु द्रव्य के परमाणुओं को भी यह चोट मार कर उत्तेजित कर देती है। ये किरणें शायद जीव की प्राणशक्ति की सहायता कर रही हैं, या शायद विनाश कर रही हैं,—क्या करती हैं मालूम नहीं, इतना ही निःसंशय कहा जा सकता है कि आघात कर रही हैं।

कस्मिक रश्मियों का इस प्रकार जो निरन्तर वर्षण चल रहा है, उसकी उत्पत्ति का रहस्य अज्ञात ही रह गया। किन्तु जाना गया कि इनका उद्यम विपुल है, सारे आसमान को छा कर इनका सञ्चार हो रहा है; जल में, स्थल में, आकाश में, सर्वत्र ही इनका प्रवेश है। इस महा आगन्तुक के पीछे विज्ञान का गुप्तचर बराबर लगा हुआ है, किसी-न-किसी दिन इसका गुप्त ठिकाना भी मालूम हो कर ही रहेगा।

बहुत से लोग कहते हैं कि कस्मिक प्रकाश प्रकाश ही है, रैन्टगन रश्मि से कहीं अधिक ज़ोरावर। इसी लिये ये रश्मियाँ सहज ही मोटा सीसा या मोटा सोना पार कर के निकल जाती हैं। विज्ञानियों की परीक्षा से इतना ही जाना गया है कि इस प्रकाश के साथ वैद्युत कणिकाय हैं। पृथ्वी के जिस क्षेत्र में चुम्बकीय शक्ति अधिक है, उसी के आकर्षण से ये अपने रास्ते से हट कर मेरु प्रदेश में जमा होती हैं, इसी लिये

पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में कस्मिक रश्मि के समावेश की अधिकता या अल्पता दिखाई देती है।

कस्मिक रश्मि के सम्बन्ध में आज भी नाना मतों का आवागमन चल ही रहा है। परमाणु के नूतन तत्त्व के सूत्रपात होने के बाद से ही विज्ञान की दुनिया में मतों और मन्तव्यों का हड़कम्प मच गया है, विश्व के मूल कारखाने की व्यवस्था में ध्रुवत्व का पक्का संकेत खोज निकालना असाध्य हो गया है। यदि कोई वस्तु नित्यत्व की ख्याति पा सकती है तो वह केवल एक आदि ज्योति है, जो सब-कुछ की भूमिका में है, जिस के प्रकाश के नाना अवस्थान्तरों के भीतर से विश्व का यह वैचित्र्य गठित हो उठा है।

नक्षत्रलोक

यह तो विश्वव्यापी अरूप वैद्युत लोक देखा गया। इन्हीं वैद्युतों के सम्मिलन से ग्रह नक्षत्रों में यह रूपलोक प्रकाशित हो रहा है।

शुरू में ही कह रखता हूं, यह जानने का कोई उपाय नहीं है कि इस विश्वब्रह्माण्ड का असली चेहरा कैसा है। विश्व-पदार्थ का बहुत थोड़ा ही हमें दिखाई देता है। इस के सिवा हमारी आँख, कान और स्पर्शेन्द्रिय की अपनी विशेषता है। इसी लिये विश्व के पदार्थ विशेष भाव से, विशेष रूप में, हमें दिखाई देते हैं। आँखों में तरंग टकराती है, हम प्रकाश देखते हैं, और भी सूक्ष्म या और भी स्थूल तरंगों को देखने की शक्ति हम में नहीं है। जो-कुछ देखते हैं वह बहुत थोड़ा है, जो कुछ नहीं देखते वह बहुत अधिक है। हमारे आंख और कान इसी तरह के हैं कि हम पृथ्वी का व्यवहार चला सकें ; प्रकृति ने यह ख़याल नहीं किया कि हम विज्ञानी बनेंगे। मनुष्य की आंख अणुवीक्षण और दूरबीन इन दोनों का काम समान भाव से कर रही है। प्रकृति ने यदि हमें आज की आंख से कई गुना अधिक अणुवीक्षण शक्ति सम्पन्न आंख दी होती तो हम पृथ्वी के समस्त पदार्थों में अणु परमाणुओं का आवर्त नृत्य

देखते। यदि बोध की सीमा बढ़ जाती या बोध की प्रकृति अन्य प्रकार की होती तो हमारी यह दुनिया भी दूसरी ही तरह की होती।

सच पूछा जाय तो विज्ञानी के लिये वह दूसरी ही तरह की हो गई है वह इतनी बदल गई है कि जिस भाषा में हम काम चलाया करते हैं, उसका अधिकांश इस दुनिया में किसी काम नहीं आता। प्रति दिन इस प्रकार के चिह्नों की भाषा तैयार करनी पड़ रही है कि साधारण मनुष्य उसका सिर-पैर कुछ भी नहीं समझ सकता।

मनुष्य ने एक दिन स्थिर किया कि विश्वमण्डल के केन्द्र में पृथ्वी का आसन अविचल है और सूर्य-नक्षत्र उसकी प्रद-क्षिणा कर रहा है। यह बात मानने के लिये उसे दोष नहीं दिया जा सकता,—उसने पृथ्वी देखने की सहज आंख से ही देखा था। आज उसकी चक्षुःशक्ति बढ़ गई है—उसे उसने विश्व-देखने-की आंख बना ली है। अब यह भेद खुल गया है कि पृथ्वी को ही, दरवेशी नाच की तरह चक्कर मारते मारते सूर्य के चारों ओर भागना पड़ रहा है। रास्ता लंबा है, प्रायः ३६५ दिन घूमने में ही लग जाते हैं। इस से भी बड़े रास्ते वाले ग्रह हैं, उनके एक बार घूम आने में इतना अधिक समय लगता है कि उतने दिनों तक बचे रहने के लिये मनुष्य को लोमश मुनि की आयु दरकार होगी।

रात में आकाश के बीच बीच नक्षत्र पुंज के साथ पुता

हुआ प्रकाश दिखाई देता है। इनका नाम नीहारिका दिया गया है। दूरबीन और कैमरे के योग से जाना गया है कि इस नीहारिका में नक्षत्रों की जो भीड़ लगी हुई है उनकी संख्या कई करोड़ है। नीहारिका मण्डल में नक्षत्रों की जो भीड़ अत्यन्त प्रचण्ड वेग से दौड़ रही है वह परस्पर धक्का खा कर चूर्णविचूर्ण क्यों नहीं हो जाती ? उत्तर देते समय चैतन्य हुआ कि इस नक्षत्र पुंज को भीड़ कहना गलती है। इन में गले से गला मिला कर या सटकर रहने का भाव एकदम नहीं है। एक दूसरे से अत्यन्त अधिक दूरी पर ये चलते फिरते हैं। परमाणु के अन्तर्गत इलेक्ट्रनों के गति-पथ की दूरी संबन्ध में सर जेम्स जीन्स ने जो उपमा दी है इस नक्षत्र मण्डली के संबन्ध में भी उसी प्रकार की उपमा दी है। वे कहते हैं कि लण्डन में वाटर्लू नामक एक स्टेशन है। जहाँ तक मुझे जान पड़ता है, यह स्टेशन हावड़ा स्टेशन से बड़ा ही है। सर जेम्स जीन्स कहते हैं कि उस स्टेशन से और सब कुछ खाली करके केवल छ धूलि कण बिखरा दिये जांय तब आकाश के नक्षत्रों का एक दूसरे से जो दूरत्व है वह सब धूलि कणा के विच्छेद के साथ तुलनीय हो सकती है। वे और भी कहते हैं कि नक्षत्रों की संख्या जितनी भी क्यों न हो, आकाश की अचिन्तनीय शून्यता के साथ उसकी तुलना हो ही नहीं सकती।

विज्ञानियों का अनुमान है कि सृष्टि में रूपवैचित्र्य का

अभिनय आरंभ होने के बहुत पहले केवल एक परिव्याप्त ज्वलन्त वाष्प ही वर्तमान था। सभी उष्ण पदार्थों का यह धर्म है कि वे धीरे धीरे ताप त्याग करते रहते हैं। खौलता हुआ पानी पहले भाप बन कर निकल आता है। ठंडा होते होते उस वाष्प के भीतर एक एक कण पानी इकट्ठा होता है। अत्यन्त गर्मी पहुंचाने से कठिन पदार्थ भी गैस हो जाता है; उसी परिमाण में जब गर्मी थी उस समय विश्व के हल्के या भारी सभी पदार्थ गैस के रूप में थे। करोड़ करोड़ वर्ष से वह ठंडा हो रहा है। गर्मी कम होते होते ऐसी अवस्था आई जब उस गैस से छोटे छोटे टुकड़े घन हो कर टूट पड़े। यही विपुल संख्यक कण तारों के आकार में दल बांध कर नीहारिका गठित किये हुए हैं। यूरोपीय भाषा में इसे नेबुला (बहुवचन नेब्यूल) कहते हैं. हमारा सूर्य एक ऐसी ही नीहारिका के अन्तर्गत है।

अमेरिका के एक पर्वत के शिखर पर एक विशाल दूरबीन स्थापित किया गया है, उस की सहायता से एक बहुत बड़ी नीहारिका दिखाई पड़ी है। आण्ड्रोमीडा नामक नक्षत्रमंडली के भीतर यह नीहारिका वर्तमान है। इसका आकार बहुत कुछ गाड़ी की पहिए के समान है। यह पहिया घूम रही है। एक एक चक्कर लगाने में उसे प्रायः दो करोड़ वर्ष लग जाते हैं। इस के पास से पृथ्वी तक प्रकाश आने में साढ़े आठ लाख वर्ष लग जाते हैं।

नक्षत्रों की दूरी के संबन्ध में सब से पहले महाविज्ञानी न्यूटन ने एक अन्दाजा लगाया था। उनकी पहली युक्ति यह थी कि नक्षत्र गण ग्रहों की भांति सूर्य के चारों ओर नहीं घूम रहे हैं। वे इतने दूर हैं कि सूर्य का आकर्षण उन तक नहीं पहुंच पाता। दूसरी बात यह कि स्वनाम धन्य पुरुषों की नाईं वे अपने ही प्रकाश से प्रकाशित हैं। तीसरा सिद्धान्त यह था कि काल पुरुष के नक्षत्र जितने उज्ज्वल दिख रहे हैं, उतना उज्ज्वल दिखने के लिये सूर्य को, अपनी दूरी से लाखों गुना अधिक दूरी पर जाना पड़ेगा। न्यूटन का हिसाब बिल्कुल ठीक रहा हो, सो बात नहीं हैं, किन्तु उस समय के लिये यह खूब बड़े ढंग की दूरी का निर्देश दिया गया था।

हमारे सब से निकट का जो नक्षत्र है, जिसे हम अपने तारा-मुहल्ले का पड़ोसी कह सकते हैं, उसकी दूरी को संख्या से सजा कर समझाने की कोशिश करना बेकार है। संख्या से बंधी हुई जिस दूरी को मोटे तौर पर समझाना हमारे लिये सहज है, वह हमारी पृथ्वी के इस गोलक में ही सीमित है, जिसे हम रैल से, मोटर से या स्टीमर से चलते चलते माप जाते हैं। पृथ्वी को छोड़ कर नक्षत्र-बस्ती की सीमा धाँगते ही अंकों की भाषा पागलपन जान पड़ती है। गणित शास्त्र नाक्षत्रिक हिसाब से संख्या के जो अण्डे देता है वह मानो पृथ्वी के बहुप्रसू (बहुत बच्चा देने वाले) कीड़ों की ही नक़ल करता है।

साधारणतः हम कोस या मील के हिसाब से ही दूरी की गिनती करते हैं, नक्षत्रों के संबन्ध में इसी रीति से काम लें तो अंकों का बोझा ढोना मुश्किल हो जायगा। अव्वल तो सूर्य ही हमारे यहां से बहुत दूर है। नक्षत्रों का दल उस से भी लाखों गुना अधिक दूर है। इनकी दूरी का हिसाब अंकों से करना वैसा ही है जैसे कोई कौड़ी से हज़ार हज़ार मोहरों की गिनती करे। संख्या का संकेत बना कर मनुष्य ने लिखने का बोझा हल्का किया है। हज़ार लिखने के लिये उसे हज़ार लकीरें नहीं खींचनी पड़तीं। किन्तु इस संकेत से ज्योतिष्क लोक के माप का काम नहीं चलता। इसी लिये एक संकेत खोज निकाला गया है। इसे प्रकाश का माप कह सकते हैं। एक वर्ष में प्रकाश ५८८००० करोड़ मील चलता है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूम आने में जो सौर वर्ष होता है वह जिस प्रकार ३६५ दिनों के माप से मापा जाता है, उसी प्रकार नक्षत्रों की गति विधि, उनकी सीमा और सरहद्दी का माप, प्रकाश की सालाना गति की मात्रा से गिना जाता है। हमारे इस नक्षत्र जगत् का व्यास अन्दाज़न् एक लाख प्रकाश वर्ष के बराबर है। और लाखों नक्षत्र जगत् इस के बाहर हैं। उन दूसरे गाँव के नक्षत्रों में से एक का परिचय फोटोग्राफी से मालूम हुआ है, वह प्रायः पचास लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। हमारे सब से नजदीकी पड़ोसी नक्षत्र की दूरी चार प्रकाश-वर्ष की है। उसके जिस क्षण का प्रकाश अभी अभी

हमारी आंखों को मिला है, अब तक उसे बीते चार वर्ष हो गये, वह नक्षत्र भी तब से २० करोड़ मील दूर आगे निकल गया है। ऐसा कोई उपाय नहीं कि किसी क़दर समय के इस व्यवधान को पार करके नक्षत्र की वर्तमान ख़बर पाई जा सके।

आंखों से देखने के युग के बाद दूरबीन का युग आया। ज्यों ज्यों दूरबीन की शक्ति बढ़ती गई त्यों त्यों द्युलोक में हमारी दृष्टि की परिधि भी बढ़ती गई। पहले जहाँ खाली स्थान दिखता था वहाँ अब नक्षत्रों के झुंड दिखाई दिये। तोभी बहुत कुछ बाक़ी रह गया। बाकी तो रहना ही चाहिये। हमारे नक्षत्र जगत् के बाहर ऐसे जगत् भी हैं जिन की रोशनी दूरबीन-दृष्टि के भी परे है। एक मामूली बत्ती की शिखा ८५७५ मील की दूरी पर जितनी रोशनी देती है, ऐसी आभा को भी दूरबीन के योग से पकड़ने की चेष्टा में मनुष्य की आंख हार मान गई। दूरबीन अपनी शक्ति के मुताबिक आंखों को खबर पहुंचा देता है, लेकिन आंखों के पास अगर इतनी शक्ति न हो कि उस अत्यन्त क्षीण समाचार को बोध के कोठे तक पहुंचा सके तो उपाय क्या है। किन्तु फोटोग्राफ के फलक (प्लेट) की प्रकाश-ग्राहिणी शक्ति आंखों से कहीं अधिक है। इस शक्ति का उद्बोधन विज्ञान ने किया है, फोटोग्राफ को उसने दूरतम आकाश में जाल फैलाने के लिये नियुक्त किया। ऐसी फोटोग्राफ़ी बनाई जो अंधकार में चुप चाप दुबके हुए प्रकाश पर भी समन जारी कर सके। दूरबीन के साथ फोटोग्राफी और

फोटोग्राफी के साथ वर्णलिपि यंत्र को जोड़ दिया। आजकल इसकी शक्ति और भी विचित्र कर दी गई है। सूर्य में अनेकानेक पदार्थ गैस हो कर जल रहे हैं। वे सब जब एक साथ मिल कर दिखाई देते हैं तो उन्हें ठोंक बजा कर देखना संभव नहीं होता। इसी लिये एक अमेरिकन विज्ञानी ने सूर्य देखने वाला दूरबीन बनाया है। इस से सूर्य में जलते हुए गैसों के सब प्रकार के रंगों से एक एक प्रकार का रंग अलग निकाल कर उसकी सहायता से यह विशेष गैसीय रूप देखना संभव हुआ है। इच्छानुसार केवल मात्र ज्वलन्त कैलसियम के बैंगनी रंग या ज्वलंत हाईड्रोजन के लाल रंग में सूर्य को देख सकने से उसके गैसीय अग्निकाण्ड की अनेक खबरें मिल जाती हैं जो और किसी तरह नहीं पाई जा सकतीं।

उजले प्रकाश को विभक्त करने से उसके वर्णसप्तक की एक ओर दिखाई पड़ता है बैगंनी रंग, और दूसरी ओर लाल—इन दो सीमाओं के बाहर जो प्रकाश है, वह हमारी आंखों को नहीं दिखता।

घने नील रंग की तरंगों का परिमाप एक इंच के डेढ़ करोड़ हिस्से का एक हिस्सा है। अर्थात् इस प्रकाश के रंग में जो तरंग लहराती है, उसकी एक तरंग की चूड़ा से परवर्ती तरंग की चूड़ा तक का माप इतना है। लाल रंग के प्रकाश की तरंग ठीक इस से दूनी होती है। एक तपाये हुए लोहे का ज्वलन्त लाल रंग जब धीरे धीरे बुझता जाता है, और

दिखाई नहीं देता उस समय और भी बड़े माप की अदृश्य प्रकाश की तरंग उससे निकलती रहती है। यह तरंग यदि हमारी दृष्टि को जगा सकती तो उस लाल-उजानी रंग के प्रकाश में हम बुझ आते हुए लोहे को देख सकते, फिर ग्रीष्म काल की साँझ को धूप जब अंधेरे में मिल भी जाती तौ भी इस लाल-उजानी प्रकाश से पृथ्वी आभासित हो कर हमें दिखाई देती।

बिल्कुल अन्धकार जैसी कोई चीज़ दुनिया में नहीं है। हम जिन्हें देख नहीं सकते उनके भी प्रकाश हैं। नक्षत्रलोक के बाहर निबिड़ काले आकाश में भी निरंतर नाना प्रकार की किरणें छिटक रही हैं। वर्णलिपि युक्त दूरबीन फोटोग्राफ की सहायता से इन अदृश्य दूतों को भी दृश्य पट पर खींच कर अनेक गुप्त बातों का पता लगा लिया जाता है।

वैंगनी-पार-का प्रकाश लाल-उजानी के प्रकाश की तरह ज्योतिषियों के इतने काम का नहीं होता। इसका कारण यह है कि इस छोटी तरंग का बहुत कुछ पृथ्वी की हवा पार करने में ही नष्ट हो जाता है। और यह दूर के लोक की खबर देने लायक नहीं रह जाती। यह तरंग परमाणुलोक की खबर देती हैं। एक विशेष मात्रा की उत्तेजना से परमाणु स्वेत प्रकाश से स्पन्दित होते हैं। तेज और भी बढ़ने पर वैंगनी-पारका प्रकाश दिखाई देता है। और भी बढ़ने पर जो रश्मि निकलती है वही एक्स-रश्मि (एक्स रे) है। अन्त में परमाणु का केन्द्र-वस्तु जब विचलित होता रहता है तो वह और भी छोटी रश्मि

ले कर गामा रश्मि में जा पहुंचता है। मनुष्य ने यंत्र-शक्ति को इतना बढ़ा लिया है कि वह एक्स-रश्मि और गामा-रश्मि जैसी रश्मियों को भी देख और अनुभव कर सकता है।

जो बात कहने जा रहा था वह यह है कि वर्णलिपि-युक्त दूरबीन-फोटोग्राफ की सहायता से मनुष्य नक्षत्र-विश्व के अति दूरवर्ती अदृश्य लोक को भी दृष्टि मार्ग में ले आया है। हमारे अपने नक्षत्र लोक से दूर बाहर के अनेक नक्षत्र लोकों का पता लगा है। केवल यही नहीं, इस यंत्र की दृष्टि में यह बात भी पड़ी है कि वे सब मिल कर हमारे नक्षत्र आकाश में और दूर-तर आकाश में चक्कर काट रहे हैं।

दूर आकाश में कोई ज्योतिर्मय गैस का पिण्ड, जिसे नक्षत्र कहते हैं, जब हमारी ओर बढ़ता आता है या दूर हटता जाता है तब हमारी दृष्टि में एक विशेषता आ जाती है। वह पिण्ड स्थिर रह कर जितनी लम्बी प्रकाश की तरंग हमारे पास पहुंचा सकता, नज़दीक आते रहने पर उस से अधिक और दूर हटते रहने पर उस से कम पहुंचाता है। जिन सब प्रकाशों की तरंग संख्या में ज्यादा और लंबाई में कम होती हैं उनका रंग वर्ण-सप्तक में बैंगनी की ओर दिखाई देता है। इसी लिये नक्षत्रों के नजदीक आने और दूर जाने का संकेत भिन्न भिन्न रंगों के सिगनल से वर्णलिपि बता दिया करती है। दूर हटने की खबर देता है लाल रंग और नजदीक आने की खबर बैगनी रंग। सीटी बजाती हुई रेलगाड़ी जब पास से निकल जाती है तो

उसकी आवाज़ कानों को अधिक मालूम होती है। क्यों कि सीटी हवा में तरंग उठा कर जो शब्द हमारे कानों तक पहुंचाती रहती है वही गाड़ी के नज़दीक आने पर तरंगों के पुंजीभूत होने के कारण जोर की अनुभूति उत्पन्न करती है। प्रकाश में अधिक रंग का सप्तक बैंगनी का है।

नीहारिका में जो उज्ज्वलता है वह उसके अपने प्रकाश के कारण नहीं है। जो नक्षत्र उस में भीड़ किये हुए हैं वे ही उसे आलोकित कर रहे हैं। ठीक उस तरह से नहीं जिस तरह चाँद को सूर्य आलोकित करता है। अर्थात् नक्षत्र का प्रकाश नीहारिका से टकरा कर नहीं आ रहा है। नीहारिका के परमाणु नक्षत्र के आलोक को सोख लेते हैं और फिर भिन्न प्रकार की लंबाई के प्रकाश के रूप में उनकी रफ्तनी कर देते हैं।

नीहारिका में और एक प्रकार की विशेषता दिखाई देती है। उस के भीतर बीच बीच में मेघ की तरह काला काला पुता हुआ-सा दिखता है, निबिड़तम तारिकाओं की भीड़ में स्थान स्थान पर काले काले खाली स्थान हैं। ज्योतिषी बर्नर्ड के पर्यवेक्षण से आकाश में इस प्रकार के प्रायः दो सौ काले धब्बे दिखाई पड़े हैं। बर्नर्ड का अनुमान है कि ये धब्बे अस्वच्छ गैस के मेघ हैं जो अपने पीछे के नक्षत्रों को ढके हुए हैं। इन में कुछ नज़दीक हैं, कुछ दूर, कोई कोई छोटे हैं और कोई कोई बहुत विशाल।

नक्षत्र लोक के पश्चाद्वर्ती आकाश में जो वस्तुपुञ्ज छितराये

हुए हैं उनकी निबिड़ता का हिसाब करने से जाना जाता है कि वह बहुत ही कम है, प्रत्येक घन इंच में सिर्फ आधे दर्जन परमाणु। यह कितना कम है यह बात इसी से समझी जा सकती है कि विज्ञान के परीक्षागार में सब से अधिक शक्तिशाली पम्प के द्वारा जो शून्यता निर्माण की जाती है उसके भीतर भी एक घन इंच में कई करोड़ परमाणु रह ही जाते हैं।

हमारा अपना नक्षत्र लोक एक चिपटा चक्कर खाया हुआ जगत् है जिस में लाखों नक्षत्र भरे पड़े हैं। उनके बीच बीच में जो आसमान है उस में अति सूक्ष्म गैस कहीं तो अत्यन्त विरल और कहीं अपेक्षाकृत घन है, कहीं उज्ज्वल और कहीं अस्वच्छ है। हमारा सूर्य इस नक्षत्र लोक के केन्द्र से दूर एक प्रान्त में स्थित एक नक्षत्र मेघ के भीतर है। नक्षत्रों की अधिक भीड़ नीहारिका के केन्द्र के पास होती है।

सेंटावेस नक्षत्र का व्यास उन्तालीस करोड़ मील है और सूर्य का आठ लाख चौसठ हजार मील। सूर्य मझोले आकार का ही तारा माना जाता है। जिस नाक्षत्र जगत् का एक मध्यवित्त तारा यह सूर्य है उसके समान और भी लाख-लाख जगत् विद्यमान हैं। सब मिला कर जो यह ब्रह्माण्ड है उसकी सीमा कहाँ है, यह हम नहीं जानते।

हमारा सूर्य अपने सब ग्रहों को लेकर चक्कर मार रहा है और उसके साथ ही साथ इस नाक्षत्र चक्रवर्तो के सब तारे चक्कर मार रहे है,—एक ही केंन्द्र के चारों ओर। चक्र प्रवाह के

आकर्षण से सूर्य का गति वेग एक सेकेन्ड में दो सौ मील है। घूमती हुई पहिया से छिटके हुए पंक की तरह यह (सूर्य) भी नक्षत्रचक्र में से छिटक पड़ता, किन्तु इस चक्र के हजार करोड़ नक्षत्र उसे खींच कर पकड़े हुए हैं और मर्यादा के बाहर नहीं जाने देते।

इस आकर्षण शक्ति की खबर निश्चय ही पाठकों की जानी हुई है, तौभी उसे इस विश्ववर्णना में से निकाल देने से काम नहीं चलने का।

सच हो या झूठ, एक कहानी मशहूर है कि विज्ञानी श्रेष्ठ न्यूटन ने एक दिन देखा कि एक सेबका फल दरख्त से गिरा। उसी समय उनके मन में लगा कि फल नीचे ही क्यों आया, ऊपर क्यों नहीं उड़ गया। सोच कर उन्हों ने देखा कि पृथ्वी सब कुछ को अपनी ओर खींच रही है, उस में खीचने की एक शक्ति है। इस शक्ति का नाम रखा गया Power of Gravitation. जिसे हिन्दी में 'महाकर्ष' कह सकते हैं। जिस में वस्तु परिमाण जितना ही अधिक है उस पर पृथ्वी का आकर्षण उतना ही ज्यादा लग रहा है। केवल पृथ्वी ही क्यों, ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं है जो खींचता नहीं। यह ज़रूर है कि खींचने कि शक्ति किसी में अधिक है किसी में कम। इस के सिवा दूरत्व की कमी ज्यादती से इस खिचाव की भी कमी ज्यादती होती है। जिस का वस्तु परिमाण दुगुना है, वह दुगुनी ताक़त से खींचता है पर अगर दूरी भी दुगुनी हो जाय तो खिचाव

चौगुना कम हो जाता है। दूरी और चौगुनी हो तो खिंचाव १६ गुना कम हो जाता है। ऐसा अगर न होता तो सूर्य के आकर्षण से बच कर पृथ्वी पर कुछ बच रहना कठिन होता। इस खींचतान की पहलवानी में नजदीक की चीजों पर पृथ्वी की ही जीत रह गई है।

दो विपरीत परमाणुओं के मिलन से जिस जगत् की रचना हुई है उस में दो सर्वव्यापी विरुद्ध शक्तियों की क्रिया चल रही है, चलना और खींचना, मुक्ति और बन्धन। एक तरफ तो ब्रह्माण्ड-व्यापी महा दौड़ और दूसरी तरफ ब्रह्माण्डव्यापी महा खिंचाव। सभी चल रहे हैं और सभी खींच रहे हैं। चलना क्या है और कहां से आता है, यह भी मालूम नहीं और खींचना क्या है और कहां से आता है, यह भी मालूम नहीं। आजके विज्ञान में वस्तु का वस्तुत्व अत्यन्त क्षीण हो आया है, यह चलना और खींचना ही सब से अधिक प्रबल हो कर दिखाई पड़ता है। अगर अकेला चलना ही होता तो वह सीधे रास्ते में ही चलता रहता जिसका कोई ओर होता न छोर। आकर्षण उसे घुमा कर-फिरा कर सान्त सीमा में ले जाता है, और चक्र पथ में घुमाया करता है। सूर्य एवं ग्रहों के बीच लाखों मील का व्यवधान है, उस दूरत्व की शून्यता पार करके निरन्तर अशरीरी आकर्षण की शक्ति चल रही है। इधर सूर्य भी बहु कोटि भ्राम्यमान नक्षत्रों से बने हुए एक महा ज्योतिष्क के आकर्षण से चक्कर मार रहा है। विश्व की अणीयसी गति शक्ति की ओर

देखो, वहां भी विराट् चलन—और विराट् आकर्षण की एक ही छन्दोलीला चल रही है। सूर्य तथा अन्य ग्रहों के बीच में जो दूरी है, तुलना करके देखा गया है कि अति परमाणु जगत् के प्रोटन और इलेक्ट्रनों की दूरी प्रायः उसी अनुपात में हैं। आकर्षण का जोर उस शून्य को पार करके इलेक्ट्रनों के दल को नित्य काल के अभ्यस्त मार्ग पर घुमा रहा है। यहां एक बार फिर से कह रखना जरूरी है कि इलेक्ट्रन और प्रोटन में जो परस्पर का आकर्षण है वह महाकर्ष संबंधी नहीं है, वह वैद्युत का आकर्षण है। परमाणुओं के अन्तरका आकर्षण वैद्युत का आकर्षण है, और बाहर का आकर्षण महाकर्ष का, जैसे मनुष्य के घर का खिंचाव आत्मीयता का खिंचाव है और बाहर का समाज संबंधी।

हमारा यह नाक्षत्र जगत् मानों विराट् शून्य के भीतर अवस्थित एक द्वीप है। यहां से दूर दूर और अनेक नाक्षत्र द्वीप दिखाई देते हैं। इन द्वीपों में जो हमारे सब से निकट है वह आण्ड्रोमीडा नक्षत्रपुंज के पास दिखाई देता है। देखने में यह एक धुंधले तारे जैसा लगता है, वहां से जो प्रकाश देखाई देता है वह नौ लाख वर्ष पहले यात्रा को निकल चुका था। कुण्डलीभूत नीहारिकायें और भी हैं, और भी अधिक दूरी पर। उनमें जो सब से दूरवर्ती है उसके विषय में हिसाब लगा कर देखा गया है कि वह ३०००००००००० प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। इन सब नाक्षत्र जगतों की संख्या जिन में कोटि कोटि नक्षत्र जमा हुए हैं, सौ करोड से कम न होगी।

आज कल एक आश्चर्य की बात चल रही है। वह यह कि नज़दीक के दो तीन को छोड़ कर बाकी नाक्षत्र जगत् हमारे पास से क्रमशः दूर हटते ही जा रहे हैं। वे जितनी ही अधिक दूरी पर हैं, उनके दौड़ने का वेग भी उतना ही अधिक है। इन सब नाक्षत्र जगतों से बने हुए जिस विश्व को हम जानते हैं वह, किसी किसी पंडित के मत से, निरन्तर फूलता जा रहा है। इस लिये वह जितना ही फूलता है उतना ही नक्षत्र पुंज के परस्पर का दूरत्व बढ़ता जा रहा है। जिस तेजी से वे हट रहे हैं उसके हिसाब से और भी १३० करोड़ वर्ष बीतने पर उनकी पारस्परिक दूरी आज की अपेक्षा दुगुनी बढ़ जायगी।

अर्थात् इस पृथ्वी के भूगठन में जो समय लगा है उतनी देर में नक्षत्र विश्व आगे की अपेक्षा दुगुना फूल गया है।

केवल यही नहीं, एक दल विज्ञानियों के मत से इस वस्तु-पुंज संघटित विश्व के साथ ही साथ गोलक रूपी आकाश भी विस्फारित होता जा रहा है। इनके मत से शून्य आकाश के किसी एक बिंदु से अगर एक सीधी लकीर खींची जाय तो वह असीम में न चली जा कर फिर उसी बिंदु पर आ मिलती है। इसका मतलब यह हुआ कि आकाश गोलक में नक्षत्रों के जगत् उसी प्रकार घेरे हुए हैं जिस प्रकार पृथ्वी गोलक को जीव जन्तु और वृक्ष लतायें। इसी लिये इस विश्व जगत् का फूल उठना उस आकाश मण्डल के विस्फारण के माप पर ही है। किन्तु यह याद रखना चाहिये कि इस मत का

स्थापन अभी पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। आकाश असीम है, काल भी निरवधि है, यह मत ही प्रबल होता जा रहा है। आकाश बुद्‌बुद की तरह है या नहीं, इस विषय पर अनेक मत बुद्‌बुद की तरह ही उठे और विलीन हो गये। इस प्रसंग में हमारे शास्त्रों का मत यह है कि सृष्टि प्रलय की ओर जा रही है। उसी प्रलय से फिर नूतन सृष्टि उद्‌भासित हो रही है, उसी प्रकार जैसे नींद और जागरण बारी बारी से आते रहते हैं। अनादि काल से सृष्टि और प्रलय का पर्याय दिन और रात की तरह बारी बारी से आ रहा है, इस कल्पना को मन में लाना ही सहज है।

पर्सियुस राशि में ऐलगल नामक एक उज्ज्वल नक्षत्र है। उस की उज्ज्वलता ६० घंटे तक स्थिर रहती है। उसके पांच घंटे बाद उसकी प्रभा एक तिहाई कम हो जाती है। इसके बाद फिर उज्ज्वल होने लगता है। पांच घंटे बाद पूर्ण उज्ज्वलता आ जाती है, यह पूर्ण ऐश्वर्य साठ घंटे तक रहता है। इस उज्ज्वलता का कारण उसका जोड़ीदार नक्षत्र है। प्रदक्षिण के समय क्षण-क्षण पर ग्रहण लगता और छूटता रहता है।

और एक प्रकारके नक्षत्र हैं जिन की दीप्ति किसी बाहरी कारण से नहीं बल्कि भीतर के ही किसी ज्वार भाटे से घटती बढ़ती रहती है। कुछ दिन तक समस्त तारा विस्फारित और फिर संकुचित हो जाता है। उसका प्रकाश मानो नाड़ी की धडकन है।

और एक प्रकार के नक्षत्रों की बात कहनी है। इन्हों ने नाम पाया है, नये तारे। इनका प्रकाश एक अत्यन्त तेज़ी के साथ उज्ज्वल हो जाता है, हजार गुने से लेकर लाख गुने तक। इस के बाद धीरे धीरे अत्यन्त म्लान हो जाता है, एक समय इन एकाएक जल उठने वाले तारों के आविर्भाव को नया आविर्भाव समझ कर इन्हें नाम दिया गया था, नये तारे।

कुछ दिन पहले, गत वर्ष, लासेर्टा अर्थात् गोधिका नामधारी नक्षत्र राशि के पास एक ऐसा ही नक्षत्र, जिसे नया तारा कहते हैं एकाएक अत्यन्त उज्ज्वल हो उठा। एक एक करके चार छिलके उसने उतार फेंके। देखा गया कि इसके उतरे हुए छिलके एक सेकेन्ड में २२०० मील के वेग से दौड़ पड़े। यह नक्षत्र प्रायः २६०० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। अर्थात् इस के गैस-ज्वलन का यह उत्पतन जो आज हमारी आंखों को दिखाई दिया है, ईसामसीह के जन्म के ६॥ सौ वर्ष पहले घटित हुआ था। उसके इन उतार फेंके हुए छिलकों का क्या हुआ, इस विषय का अनुमान लगाया जा रहा है। वह क्या उसका बन्धन काट कर महाशून्य में विरागी होते जा रहे हैं, या उसी के आकर्षण में बँध कर उसके अनुगत होते जा रहे हैं। यह जो तारों का जल उठना है, इस घटना पर विचार करते हुए किसी किसी पंडित ने कहा है कि सम्भवतः नक्षत्र के इसी प्रकार के विस्फोरण से ग्रहों की उत्पत्ति होती है। खूब संभव, सूर्य ने भी एक दिन इसी प्रकार नये तारों की रीति अनुसरण करके अपने

उत्सारित विच्छिन्न अंशों से ही ग्रहरूपी सन्तानों को जन्म दिया था। यह मत अगर ठीक हो तो सम्भवतः प्रत्येक प्राचीन नक्षत्र को एक दिन विस्फोरण की अवस्था प्राप्त होती है और इस प्रकार ग्रह वंश की सृष्टि होती है। शायद् आकाश में कम ही नक्षत्र निःसन्तान हैं।

दूसरा मत यह है कि बाहर का एक चला आता हुआ तारा परस्पर के आकर्षण के इलाके में आ कर इस प्रलय काण्ड के घटाने में सहायक हुआ है। इस मतके अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति की आलोचना बाद में की जायगी।

हमारे नाक्षत्र जगत् के नक्षत्र नाना जाति के हैं। कोई कोई सूर्य से दश हजार गुना अधिक प्रकाश देता है, और कोई कोई सौवें हिस्से का एक हिस्सा। किसी किसी का पदार्थपुञ्ज बहुत घन है और किसी का अत्यन्त पतला। किसी के ऊपरी सतह की ताप मात्रा ३० हजार सेन्टीग्रेड है, किसी किसी का तीन हजार सेन्टीग्रेड से अधिक नहीं, कोई कोई बार बार प्रसारित और कुञ्चित होते होते आलोक और उत्ताप का ज्वार भाटा उठा रहे हैं, कुछ अकेले चल रहे हैं और कुछ झुंड बाँध कर। इनकी संख्या नक्षत्र दल की एक तिहाई है। जोड़े नक्षत्र महाकर्ष के जाल में फँस कर प्रदक्षिण का अभिनय कर रहे हैं। जोड़े में जिस के आकर्षण की ताकत कम है उसी के सिर पर प्रदक्षिण की जवाबदेही पड़ती है। बिचारी अबला पृथ्वी कुछ खींच ही न रही हो सो बात नहीं है किन्तु सूर्य को

वहुत अधिक विचलित नहीं कर सकती। प्रदक्षिण का सारा अनुष्ठान अकेली पृथ्वी को ही करना पड़ता है। जहां दो ज्योतिष्कों के आकर्षण की शक्ति प्रायः बराबर है वहाँ बीच में लक्ष्य स्थिर रख कर दोनों ही उसी लक्ष्य की प्रदक्षिणा करते हैं।

किसी किसी जोड़े को प्रदक्षिण का एक चक्कर लगाने में कई हजार वर्ष लग जाते हैं; कभी देखा जाता है, चक्कर देते देते एक ने दूसरे को हमारी दृष्टि के पथ से आड़ में कर दिया, इस प्रकार उज्ज्वलता में बाधा देता है। किन्तु ओट में करने वाला नक्षत्र अपेक्षाकृत अनुज्ज्वल न होता तो उज्ज्वलता में बाधा न पड़ती। नक्षत्रों में एक दूसरे की उज्ज्वलता में काफी भेद है। किसी नक्षत्र ने, ऐसा भी होता है कि, अपनी सब दीप्ति खो दी। प्रकाण्ड आयतन और प्रचण्ड उत्ताप ले कर जो नक्षत्र अपनो बाल्य दशा शुरू करते हैं, वे पहले उजले होते हैं, बाद में कुछ पीलापन लिये हुए और तीन पन बीत जाने पर लाल हो जाते हैं। इसके बाद और भी ठंडा हो जाने पर खरच करने लायक जो कुछ प्रकाश की पूंजी रहती है उसे भी फूंक बैठते हैं। अन्तिम अवस्था में ये दिवालिये नक्षत्र अख्यात अन्धकार में वास करते हैं।

वेटेलजियुस नामक एक महाकाय नक्षत्र है, उसकी लाल रोशनी देखने से जान पड़ता है कि उसकी उमर काफी बड़ी हो चुकी है, फिर भी वह झिलमिला रहा हैं। हाल ही में खबर मिली है कि यह तारा वृद्ध नहीं, बालक है। हमारा सूर्य

इसकी अपेक्षा प्रौढ़ है। फिर वह है बहुत दूर, पृथ्वी तक उसका प्रकाश आने में १६० वर्ष लगते हैं। असल बात यह है कि इसका आयतन अति विशाल है, अपने शरीर में करोड़ों सूर्यों को स्थान दे सकता है। उधर वृश्चिक राशि में एन्टारेस् नामक एक नक्षत्र है, उसका आयतन बेटेलजियुस से भी प्रायः दुगुना है। फिर ऐसे भी नक्षत्र हैं जो हैं तो गैसमय परन्तु वजन में लोहे से भी भारी हैं।

महाकाय नक्षत्र इस लिये बड़े नहीं हैं कि उनका वस्तु परिमाण बहुत अधिक है, वे सिर्फ बहुत अधिक फूल उठे हैं। फिर ऐसे अनेक छोटे नक्षत्र हैं जिन की छुटाई के कारण उनके गैस का सम्बल ठूंस ठूंस कर बांधे हुए गट्ठर की तरह है। सूर्य का घनत्व इनके बीच का है, अर्थात् पानी से कुछ ज्यादा। कैपेला नक्षत्र का औसत घनत्व हमारी हवा के समान है। लेकिन वहाँ अगर हम हवा बदलने की बात सोचें तो याद रखना होगा कि परिवर्तन अत्यन्त अधिक होगा। उसके ताप की मात्रा ३० लाख सेन्टीग्रेड के आसपास है। इन सब को मान कर गया है कालपुरुष मंडली का दानव नक्षत्र बेटेलजियुस और वृश्चिक राशि वाला एन्टारेस। इनका घनत्व इतना अधिक कम है कि पृथ्वी के किसी पदार्थ के साथ उनकी सुदूर तुलना भी नहीं हो सकती ; विज्ञान की प्रयोगशाला में खूब खींच कर पम्प किए हुए पात्र में जितनी कुछ गैस बची रह जाती है उसी के समान।

फिर दूसरे किनारे पर उजले रंग के ठिगने तारे हैं। उनके घनत्व के निकट लोहा या प्लैटिनम कुछ भी नहीं पहुंच सकते। फिर भी ये जम कर कठिन नहीं हो गये हैं, ये सब गैस-देही सूर्य के ही सगोत्र हैं। तारों की भीतरी दुनिया में जलने की जो प्रचण्ड आंच है उससे इलेक्ट्रन गण प्रोटन के बन्धन से विच्छिन्न हो जाते हैं, और तावेदारी की जवाबदेही से छुट्टी पा जाते हैं,—दोनों दोनों का मान बचा कर चलते तो जो अन्तर रह जाता वह कम हो जाता है, इस प्रकार उच्छृंखल परमाणुओं में निरन्तर सिर फुड़ौवल चलती रहती है। परमाणु की इसी आयतन की छुटाई के अनुसार नक्षत्र का आयतन भी छोटा हो जाता है। इधर इस तोड़-फोड़ के गैर कानूनी शान्ति-भंग से गर्मी बढ़ जाती है, जो सहज मात्रा को छोड़ जाती है, और फिर घन गैस प्लेटिनम से भी तीन हजार गुना भारी हो जाता है। इसी लिये ठिगने तारे माप में छोटे होते हैं, पर ताप में नहीं, और वजन की मर्यादा में भी बड़ों को मात देते हैं। सोरियस नक्षत्र में एक अस्पष्ट संगी तारा है। उसका माप तो साधारण ग्रहों के समान छोटा है परन्तु उसके वस्तु पुंज का परिमाण सूर्य के ही समान है। सूर्यका घनत्व जल के ड्योढ़े से कुछ कम है। पर सीरियस के संगी का औसत घनत्व जल के पचास हजार गुना है। एक दियासलाई की डिबिया में इसका गैस भरा जाय तो उसका वज़न पचास मन से भी अधिक होगा। और फिर पर्सियस नक्षत्र के छोटे साथी

का उसी मात्रा का पदार्थ वज़न में करीब दस हजार मन से भी अधिक होता।

हमारे नाक्षत्र जगत् के नक्षत्रों के दल, कोई पूर्व में कोई दक्षिण में, नाना तरह के मार्गों से चल रहे हैं। सूर्य सेकेण्ड में बारह मील के वेग से दौड़ रहा है, एक दानव तारा है जिसके दौड़ने का वेग प्रति सेकेण्ड सात सौ मील है। किन्तु अचरज की बात यह है कि इन में का कोई भी नाक्षत्र जगत् के शासन की अवज्ञा करके बाहर जा कर गायब नहीं हो जाता। एक महाकर्ष के महाजाल में करोड़ों नक्षत्रों को बाँध कर यह जगत् लट्टू की भांति चक्कर मार रहा है। हमारे नाक्षत्र जगत् के बाहर के दूरवर्ती जगत् में भी यह आवर्तनृत्य जारी है। इधर परमाणु जगत् के अणुतम आकाश में प्रोटन और इलेक्ट्रन का चक्कर मारना चल रहा है। इसी लिये हमारी भाषा में इस विश्व को जगत् कहते है। अर्थात् यह चल रहा है, यही इसकी संज्ञा है— चलने से ही इसकी उत्पत्ति है, चलना ही इसका स्वभाव।

नाक्षत्र जगत् के देश काल का परिमाप, परिमाण, दूरत्व और उसके अग्नि आवर्त की चिन्तनातीत प्रचण्डता को देख कर जितना भी विस्मय क्यों न मालूम हो, यह बात माननी ही पड़ेगी कि इस विश्व में सब से बड़े आश्चर्य का विषय यह हैं कि मनुष्य उसे जान रहा है, और अपनी आशु जीविका के प्रयोजन को अतिक्रम करके उन्हें जानने जा रहा हैं। क्षुद्र से भी क्षुद्र क्षणभंगुर उसका देह है, विराट् विश्व-संस्थिति के अणुमात्र

स्थान में उसका वास है, फिर भी असीम के नैकट्य-प्राप्त विश्व ब्रह्माण्ड के दुष्परिमेय वृहत् और दुरधिगम्य सूक्ष्मत्व का हिसाब वह जानता है —इस से अधिक आश्चर्य की महिमा इस विश्व में कुछ भी नहीं; या विपुल सृष्टि के निरवधि काल में क्या पता कि और किसी लोक में और किसी चित्त को अधिकार करके और कोई भाव प्रकाशित हो रहा है या नहीं। किन्तु इस बात को मनुष्य ने सिद्ध कर दिया है कि भूमा बाहर के आयतन में भी नहीं है, परिमाण में भी नहीं है, कहीं है तो वह अन्तर की परिपूर्णता में है।

सौरजगत्

नक्षत्रगण एक दूसरे से करोड़ों मील दूर रह कर घूम रहे हैं इस लिये यह प्रायः निश्चित है कि उन में परस्पर धक्का लगना संभव नहीं। किसी किसी का अनुमान है कि प्रायः दो सौ करोड़ वर्ष पहले ऐसी ही एक दुःसम्भव घटना हो गई थी। उस युग के सूर्य के निकट एक विशाल नक्षत्र आ पहुंचा था। इस नक्षत्र के आकर्षण से सूर्य के भीतर प्रचण्ड वेग से अग्निवाष्प के ज्वार की तरंगें लहरा उठी थीं। अन्त में आकर्षण के वेग से कोई कोई तरंग इतनी बढ़ी कि अन्त में टूट कर वाहर निकल आई। खूब संभव, उस बड़े नक्षत्र ने इन में से कइयों को आत्मसात् कर लिया होगा, बाकी टुकड़े सूर्य के प्रबल आकर्षण से खिच कर उसी के चारों ओर चक्कर काटने लगे। उन्हीं छोटे बड़े ज्वलन्त वाष्प के टुकड़ों से ग्रहों की उत्पत्ति हुई; पृथ्वी उनमें से एक है। ये टुकड़े क्रमशः तेजोहीन और सर्द हो कर ग्रह का आकार धारण कर गये। आकाश के नक्षत्रों की दूरी संख्या और गति का हिसाब करके देखा गया है कि प्रायः ५-६ हजार करोड़ वर्ष में एक बार ऐसा उत्पात हो भी सकता है। ग्रह-सृष्टि के इस मत को मान लिया जाय तो कहना होगा कि ग्रह-परिचय वाली नक्षत्र-सृष्टि इस विश्व में प्रायः अघटनीय

घटना ही है। किन्तु, ब्रह्माण्ड की अण्ड गोलक सीमा के निरन्तर फूल उठने से नक्षत्र गण क्रमशः एक दूसरे के पास से दूर हटते जा रहे हैं, यह मत यदि मान लिया जाय तो मानना पड़ेगा कि पूर्व युग में जब आकाश-गोलक संकीर्ण था उस समय ताराओं का परस्पर टकरा जाना प्रायः सम्भव होता रहता होगा। उस नक्षत्रों के मेले की भीड़ के समय अनेक नक्षत्रों के छिन्न अंश से ग्रहों की उत्पत्ति की सम्भावना थी, यह बात युक्ति-संगत है। फिर ऐसा मान लेना होगा कि जिस अवस्था में हमारा सूर्य किसी अन्य सूर्य से टकराया होगा वह अवस्था उस संकुचित विश्व के काल में आजके समान दुःसम्भव नहीं थी। जिन लोगों ने यह मत नहीं मान लिया, उनमें से अनेकों का कहना है कि प्रत्येक नक्षत्र के विकास की विशेष अवस्था में क्रमशः एक ऐसा समय आता है, जिस समय वह पके सेमर के फल की भांति फट कर प्रचण्ड वेग से अपने चारों ओर ढेर-का-ढेर अग्नि वाष्प बिखेर देते हैं। किसी किसी नक्षत्र से आचानक इस प्रकार का ज्वलन्त गैस निकलते हुए देखा गया है। एक छोटा-सा नक्षत्र था, कई वर्ष पहले तक उसे दूरबीन की सहायता के बिना नहीं देखा जा सका था। एक बार अचानक वह दीप्ति में आकाश के उज्ज्वल नक्षत्रों के प्रायः समान हो उठा। फिर कुछ महीने बाद उसका प्रताप इतना क्षीण हो गया कि पहले के समान ही उसे दूरबीन बिना देखा ही न जा सका। उज्ज्वल अवस्था में थोड़े समय में इस नक्षत्र ने चारों ओर पुञ्ज पुञ्ज

ज्वलन्त वाष्प बिखेर दिये, और वे ही धीरे धीरे बड़े हो कर जम गये। इस प्रकार इसके द्वारा ग्रह उपग्रहों की सृष्टि हुई, यह अनुमान करना असंगत नहीं है। यह मत अगर मान लिया जाय तो कहना होगा कि करोड़ करोड़ नक्षत्र इस अवस्था के भीतर से गुज़र चुके हैं ; अतएव सौर मण्डल की भांति ही अपने अपने ग्रहों के दल ले कर कोटि कोटि नक्षत्र-जगत् इस विश्व को पूर्ण किये हुए हैं। पृथ्वी के सब से निकट जो नक्षत्र है, अगर उसके भी ग्रह-मण्डली हो तो उसे देखने के लिये जितने बड़े दूरबीन की जरूरत है, वह अब तक तैयार नहीं हुआ है।

कुछ ही दिन हुए केम्ब्रिज के एक तरुण पंण्डित ने सौर जगत् की सृष्टि के संबन्ध में एक मत का प्रचार किया है। पहले ही कहा है कि आकाश में अनेक युग्म नक्षत्र हैं, जो एक दूसरे की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। इनके मत से हमारे सूर्य का भी एक जोड़ा था। एक घुमक्कड़ अवारे ज्योतिष्क पिण्ड ने सूर्य के उस अनुचर को एक धक्का मारा और उसे अनेक दूर छिटका कर चलता बना। उसके जाते जाते भी परस्पर के आकर्षण से ज्वलन्त वाष्प का एक बहुत बड़ा आकृष्ट सूत्र निकल आया था ; उसके भीतर इन दोनों की उपादान सामग्री मिली हुई थी। इस वाष्प सूत्र का जो अंश सूर्य के प्रबल आकर्षण से रुक गया था, उसी गिरफ्तार गैस से हमारी ग्रहमण्डली पैदा हुई है। आयतन में छोटे होने के कारण इनके ठंडे होने में भी देर नहीं लगी ; ताप कम होते होते गैस के टुकड़े पहले तरल हुए, फिर और

ठंडे होने पर उनका बाहरी भाग जम कर कड़ा हो गया। लेकिन भीतरी भाग अब भी उष्ण-तरल गैसीय पदार्थों से भरा है।

कहना आवश्यक है कि सूर्य का सब-कुछ गैस है। पृथ्वी के जो सब उपादान मिट्टी, धातु, पत्थर आदि के रूप में हैं उनमें का सब कुछ सूर्य में प्रचण्ड उत्ताप के कारण गैस की अवस्था में हैं। किरीटिका के अति सूक्ष्म गेस-आवरण की बात पहले ही कही गई है। उस स्तर को भेद करके जितना ही जाया जायगा उतनी ही घनतर गैस और उष्णतर ताप दिखाई देगा। अन्त में ऐसे स्तर पर पहुंचना पड़ेगा जहाँ ठसा-ठस भरे हुए गैस में स्वच्छता नहीं रह जाती। इस स्थान पर दस हजार फारेनहाइट डिग्री का ताप है। इस आलोड़ित स्तर को जितना ही भेद करते जायेंगे उतना ही घनत्व और ताप बढ़ता जायगा। अन्त में केन्द्र में १ करोड़ ५० लाख डिग्री का ताप मिलेगा। इस स्थान पर सूर्य का देह-वस्तु लोहे और पत्थर से कहीं अधिक घना है फिर भी वह गैस-धर्मी है। इतने उत्ताप में सूर्य का सारा गैस एक्स रश्मि में बदल जाता है। वहाँ एक्स रश्मि प्रकाश की चाल से दौड़ती है और छिन्न-बन्धन इलेक्ट्रन गण एक सेकेण्ड में दस हज़ार मील की तेजी से भागते हैं। परमाणुओं में प्रायः सभी हाईड्रोजन के हैं जिन के इलेक्ट्रन खो गये हैं, अर्थात् सभी प्रोटन हैं—वे एक सेकेण्ड में ३ सौ मील के वेग से दौड़ते हैं। और इनके बीच बीच में लोहे आदि के भारी परमाणु मन्दगति से लड़खड़ाते

हुए एक सेकेण्ड में सिर्फ चालीस मील के वेग से दौड़ते रहते हैं।

सूर्य की दूरी की बात अंक से कहने की कोशिश न करके एक काल्पनिक व्याख्या से बता दूं। हमारे शरीर में जो अनुभूतियाँ घटित हो रही हैं, उनकी खबर फैलाने की व्यवस्था हमारी असंख्य स्पर्श नाड़ियाँ कर रही हैं। ये नाड़ियाँ हमारे शरीर में व्याप्त हो कर मस्तिष्क में जा मिली हैं। टेलिग्राफ के तार की तरह उनके योग से मस्तिष्क को खबर पहुंचती है। हम समझ सकते हैं कि चींटी ने कहां काटा है, जीभ में जो खाद्य पदार्थ लगा वह मीठा है, दूधका जो कटोरा हाथ में उठाया है वह गर्म है। हमारा शरीर हावड़ा से लेकर बर्दवान तक फैला हुआ विशाल नहीं है, इसी लिये खबर लगने में देरी नहीं होती, तो भी बहुत थोड़ा-सा समय लग ही जाता है; वह इतना कम है कि उसका मापना कठिन है। किन्तु पंडितों ने उसे भी मापा है। उन्हों ने परीक्षा करके स्थिर किया है कि मनुष्य के शरीर के भीतर से दैहिक घटना प्रति सेकेन्ड चार सौ फीट के वेग से अनुभूति तक पहुंचती है। अच्छा, अब कल्पना करें कि एक ऐसा दैत्य है जो पृथ्वी पर से हाथ बढ़ावे तो उसका हाथ सूर्य तक पहुंच सके। उस दुःसाहसी दैत्य का हाथ जितना भी मजबूत क्यों न हो सूर्य का शरीर स्पर्श करते ही जल कर भस्म हो जायगा। किन्तु जलने की जो पीडा और क्षति है उसकी खबर नाडियों की सहायता से

उसके दिमाग तक आते आते प्रायः ४० वर्ष लग जाँयगे। उसके पहले ही अगर वह मर जाय तो उसे पता ही नहीं लगेगा।

सूर्य का व्यास ८ लाख ६६ हजार मीलों का है। ११० पृथ्वी एक ही सीधी रेखा में सटा सटा कर रखें तो सूर्य के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक पहुंच सकती हैं। सूर्य का वजन पृथ्वी से ३ लाख ३० हजार गुना है। इसी लिये उसी मात्रा के वज़न की ताक़त से वह अपनी ओर खींच सकता है। इस आकर्षण के बल पर सूर्य पृथ्वी को अपनी अधीनता में तो रख सकता है पर बहुत अधिक दूर होने के कारण आत्मसात् नहीं कर सकता।

एक आलू के ठीक बीच में ऊपर से नीचे तक, एक सलाई घुसेड़ दी जाय और आलू को उसी सलाई के चारों ओर घुमाया जाय तो वह घूमना जैसा होगा वैसा ही २४ घन्टे में पृथ्वी का एक बार घूमना होता है। हम कहते हैं पृथ्वी अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूम रही है। हमारे सलाई वाले आलू के साथ पृथ्वी का अन्तर इतना ही है कि उस प्रकार की कोई सलाई पृथ्वी में नहीं है। मेरुदण्ड जैसा कोई दण्ड ही उसमें नहीं है। जिस स्थान पर सलाई रह सकती, काल्पनिक सीधी लकीर की उसी जगह को हम मेरुदण्ड कहते हैं। जैसे लट्टू। यह अपने भीतर की एक ऐसी ही खड़ी रेखा के चारों ओर घूमता है, जिसे हमने मान लिया है।

मेरुदण्ड के चारों ओर पृथ्वी के एक बार घूमने में चौबीस

घन्टे लगते हैं। सूर्य भी अपने मेरुदण्ड को चारों ओर घूमता है। इसके घूमने में जितना समय लगता है, वह जिस उपाय से जाना गया है, वह बता दूं। खूब सवेरे जब प्रकाश से आंखें चौंधिया नहीं जातीं, उस समय सूर्य की ओर देखा जाय तो शायद मालूम होगा कि उसमें काले काले धब्बे हैं। एक-एक काले धब्बे कभी कभी इतने बड़े हो कर प्रकाशित होते हैं कि सारे ग्रह उपग्रह मिल कर भी उनके बराबर नहीं होते। छोटे छोटे धब्बों के लोप होते ज्यादा समय नहीं लगता पर बड़े बड़े धब्बे दो-दो तीन-तीन सप्ताह तक रहते हैं। दूरबीन ले कर देखने से जान पड़ता है कि ये क्रमशः दाहिनी ओर घूम रहे हैं, किन्तु असल में इन सब को अपने शरीर में लिये हुए सूर्य ही घूम रहा है। उन्हीं काले धब्बों का अनुसरण करके इस घूमने के समय का हिसाब जाना जा सका है। प्रमाणित हुआ है कि पृथ्वी २४ घंटे में घूमती है और सूर्य २६ दिन में।

सूर्य के धब्बे सूर्य के बाहरी आवरण में विशाल गह्वर हैं। वहां से उत्तप्त गैस कुण्डली के आकार में चक्कर काटती हुई बाहर निकल रही है। इसका एक एक केन्द्र प्रदेश है जो घोर काला है, उसका नाम है आम्ब्रा ; उसके चारों ओर उस से कम काली वेष्टनी है, जिसका नाम है पेनाम्ब्रा। चारों ओर की दीप्ति की तुलना में इन्हें काला देखा जा रहा है,—वह दीप्ति अगर बंद कर दी जाती तो इनकी ज्योति भी अत्यन्त तीव्र दिखाई देती। सूर्य का जो धब्बा बहुत बड़ा है उसके आम्ब्रा

के एक किनारे से दूसरे किनारे तक का माप पचास हजार मील है और डेढ़ लाख मील है उस के पेनाम्ब्रा का माप।

सूर्य के इन धब्बों के घटने-बढ़ने का प्रभाव पृथ्वी पर नाना भांति से पड़ता है। जैसे हमारी आबहवा पर। प्रायः ग्यारह वर्ष की बारी बारी से सूर्य के धब्बों का आविर्भाव देखा जाता है। परीक्षा करके देखा गया है कि वनस्पति के तने में इन धब्बे वाले वर्षों की गवाही अंकित होती रहती है। बड़े वृक्षों के तने में काटने पर उस प्रति वर्ष का एक गोल चक्करदार चिह्न दिखाई देता है। ये चिह्न कहीं-कहीं तो सटे हुए हैं और कहीं कहीं दूर दूर। प्रत्येक चक्करदार चिह्न से जान पड़ता है कि वृक्ष प्रति वर्ष कितना बढ़ा है। अमेरिका के एरिजोना के मरुमय प्रदेश में डाक्टर डगलस ने देखा है कि जिस साल सूर्य के काले धब्बे अधिक होते हैं उस साल तने के चिह्न अधिक चौड़े होते हैं। एरिजोनाके पाइन वृक्षों के पांच सौ वर्षों के चिह्न गिनते गिनते देखा गया कि १६५० ई० से १७२५ तक सूर्य के धब्बों के लक्षण नहीं मिलते। अन्त में ग्रीनिच मान यंत्र विभाग से खबर लेकर उन्हों ने जाना कि उन वर्षों में सूर्य के धब्बे प्रायः नहीं थे।

आजकल सूर्य के धब्बे बढ़ते जा रहे हैं। सन् १९३८ या १९३९ में इनके पूरा पूरा बढ़ जाने की बात है।

ग्रहलोक

यह पहले ही बताया गया है कि ग्रह किसे कहते हैं। सूर्य नक्षत्र है, पृथ्वी ग्रह, अर्थात् सूर्य से टूट कर निकल आया हुआ टुकड़ा, जिस का प्रकाश ठंडा हो कर बुझ गया है। किसी किसी ग्रह में गर्मी अब भी हो सकती है, पर रोशनी नहीं है। सूर्य के चारों ओर इन ग्रहों के घूमने का रास्ता चक्र रेखा के समान गोलाकार है। किसी का रास्ता सूर्य के निकट है और किसी किसी का सूर्य से बहुत दूर है। किसी को सूर्य के चारों ओर घूम आने में साल भर से भी कम समय लगता है और किसी को सौ साल से भी ऊपर। जिस ग्रह को घूमने में जितना भी समय क्यों न लगे, इस घूमने का एक निश्चित नियम है, इसका व्यतिक्रम कभी नहीं होता। सूर्य परिवार के सभी ग्रहों को, चाहे वे दूर के हों, या निकट के, छोटे हों या बड़े, पश्चिम से पूर्व की ओर प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। इस से यह जाना जाता है कि सभी ग्रह एक ही समय धक्का खा कर सूर्य में से छिटक पड़े होंगे, इसी लिये उनका चलने का झुकाव एक ही ओर हुआ है। चलती हुई गाड़ी से उतरते समय जिस ओर गाड़ी जाती रहती है, उसी ओर शरीर में एक झोंका लगता है। गाड़ी से अगर पांच आदमी उतरें तो उन पांचों को एक ही ओर से

झोंका लगेगा। उसी प्रकार घूमते हुए सूर्य से निकल आते समय सभी ग्रहों का झुकाव एक ही ओर हुआ है। उनके इस चलने की प्रवृत्ति से सिद्ध होता है, वे सभी एक ही जाति के हैं, सब का झुकाव एक ही ओर है।

सूर्य के सब से निकट है बुध ग्रह, अंग्रेजी में इसे मर्करी कहते हैं। यह सूर्य से साढ़े तीन करोड़ मील दूर है अर्थात् पृथ्वी जितनी दूरी पर घूम रही है उसके प्रायः तीन भाग का एक भाग। बुध के शरीर में कुछ धुंधले धब्बे दिखाई देते हैं उसको लक्ष्य करके जाना गया है कि उसकी एक ही पीठ सूर्य की ओर है। सूर्य के चारों ओर घूम आने में उसे ८८ दिन लगते हैं। अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूम आने में भी उसे उतना ही समय लगता है। अर्थात् उसका दिन जितना बड़ा होता है, साल भी उतना ही बड़ा होता है। सूर्य की प्रदक्षिणा करते समय पृथ्वी के दौड़ने का वेग प्रति सेकेण्ड उन्नीस मील है। बुध ग्रह का वेग इसे मात दे गया है, उस का वेग प्रति सेकेंड तीस मील है। एक तो उसका रास्ता छोटा है दूसरे उसमें हड़बड़ी बहुत अधिक है, इसी लिये पृथ्वी के चौथाई समय में ही उस का प्रदक्षिण समाप्त हो जाता है। बुध ग्रह के प्रदक्षिण का जो रास्ता हैं, सूर्य ठीक उसके केंद्र में नहीं है, ज़रा एक किनारे है। इसी लिये घूमते समय बुध कभी तो सूर्य के अपेक्षाकृत निकट आता है और कभी दूर चला जाता है।

पृथ्वी का व्यास आठ हज़ार मील का है, और बुधका उसके

आधे से भी कम। यह ग्रह सूर्य के इतने निकट रहने का कारण बहुत अधिक ताप पाता है। जितनी गर्मी से पानी खौलने लगता है, बुध ग्रह के ताप की मात्रा उस के तीनगुने से भी अधिक है। इतनी गर्मी से पानी भाप बन कर लोप हो जाता है। सिर्फ यही नहीं, इतने ताप में हवा के परमाणु इतनी तेजी से चञ्चल हो उठते हैं कि बुध ग्रह उन्हें पकड़ कर रख नहीं सकता, वे देश छोड़ कर शून्य में दौड़ लगाते हैं। हवा के परमाणु भगोड़े स्वभाव के हैं। पृथ्वी पर वे सेकेंड में महज़ दो मील के वेग से भागा करते हैं, इसी लिये आकर्षण के बल पर पृथ्वी उन्हें सम्हाल पाती है। किन्तु यदि किसी कारण से ताप बढ़ जाता तो वे प्रति सेकेन्ड सात मील के वेग से भाग पड़ते फिर तो पृथ्वी भी अपनी हवा को अधिक समय तक काबू में न रख सकती।

जो विज्ञानी लोग विश्व जगत् के अरायज़नवीश हैं उनका एक प्रधान कार्य है, ग्रह नक्षत्रों का माप ठीक करना। इस काम में मामूली तराजू और बाँट से काम नहीं चलता, इसी लिये कौशल-पूर्वक उनसे खबर वसूल की जाती है। यही बात समझा कर कहता हूं। कल्पना करो कि एक लुढ़कता हुआ गोला आकर अचानक एक पथिक को धक्का मार गया, पथिक दस हाथ दूर जा गिरा। कितने बड़े वजन का गोला धक्का मारे तो आदमी इतनी दूर तक बिचलित हो सकता है, यह नियम अगर मालूम हो तो इस दस हाथ के माप पर से हिसाब करके गोले का वजन

हैलि का धूमकेतु, १९१० ई०

निकाल लिया जा सकता है। एक बार अचानक इसी प्रकार का हिसाब करने का सुयोग मिलने से बुध ग्रह का वजन निकालना आसान हो गया। यह सुयोग एक धूमकेतु के कारण मिला। यह बात बताने के पहले यह बता रखना ज़रूरी है कि धूमकेतु गण किस जाति के ज्योतिष्क हैं। ग्रहगण सूर्य के अपने हैं, किन्तु धूमकेतुगण एक दम विराने। वे बहुत दूर बाहर से अचानक सूर्य के इलाके में आ पड़ते है। किसी प्रकार एक वार सूर्य के चारों ओर घूम कर के तत्काल विरागी हो कर निकल पड़ते हैं।

धूमकेतु शब्द का अर्थ है, धुएँ की पताका। उसको चेहरे को देख कर ही यह नाम दिया गया है। उसका मुण्ड गोल है और उसके पीछे एक उज्ज्वल लंबी पताका फहरा रही है। साधारणतः यही उसका आकार है। यह पताका अत्यन्त सूक्ष्म वाष्प की बनी होती है। वह इतना सूक्ष्म है कि पृथ्वी कभी कभी इसे मर्दन करती हुई निकल गई है फिर भी हम अनुभव न कर सके। उसका मुण्ड उल्का पिण्ड से बना है। बीच बीच में कोई कोई धूमकेतु सूर्य के राज्य में घुस आते हैं और फिर बाहर नहीं निकल पाते, सूर्य के शासन में बद्ध हो कर अनुचरों के दल में भरती हो जाते हैं। तब उन्हें भी यथा नियम सूर्य की प्रदक्षिणा करनी होती है, प्रदक्षिणा का वह मार्ग और समय पक्की तौर पर निश्चित हो जाता है।

सौर परिवार के इसी प्रकारके एक नये संबंधी धूमकेतु के

प्रदक्षिण मार्ग में एक बार व्याघात उपस्थित हुआ। जब वह बुध की कक्षा के पास से गुजर रहा था, उसी समय बुधके साथ खींचतान के कारण उसका रास्ता गड़बड़ा गया। रैल गाड़ी जब पटरी से हट जाती है तो फिर से ठेल कर उसे पटरी पर चढ़ा दिया जाता है पर उस से टाइम टेबुल का निर्दिष्ट समय बीत जाता है। यहां भी ऐसा ही हुआ। धूमकेतु जब अपने रास्ते पर लौटा तो तबतक उसका समय उत्तीर्ण हो चुका था। धूमकेतु को जिस परिमाण में हिला देने में बुध ग्रह के जितने आकर्षण का जोर लगा था, उस पर से हिसाब लगाया जाने लगा। जिसका वजन जितना होता है उतनी ही शक्ति से वह खींचा करता है, यह जानी हुई बात है, इसी नियम पर से बुध ग्रह का वजन निकाला गया। देखा गया कि बुध ग्रह के समान इक्कीस बटखरे चढ़ाये जाँय तब कहीं वजन पृथ्वीके बराबर होगा।

बुध ग्रहके रास्ते पर ही शुक्र ग्रह के प्रदक्षिण की पारी आती है। सूर्य को एक बार घूम आने में उसे २२५ दिन लगते हैं, अर्थात् हमारे साढ़े सात महीने का उसका साल है। उसके मेरुदण्ड पर चक्कर काटने का वेग क्या है, इस विषय के तर्क की अब भी समाधा नहीं हुई। यह ग्रह साल में एक बार सूर्यास्त के बाद पश्चिम क्षितिज पर दिखाई देता है, उस समय इसे सन्ध्यातारा कहते हैं, फिर यही ग्रह एक समय सूर्योदय के पहले पूर्व ओर उदय होता है, उस समय उसे शुक्र तारा कहते

हैं। किन्तु असल में यह तारा है ही नहीं ; खूब चमकने-दमकने के कारण जनता के पास से इसने तारा का खिताब पाया है। इसका आयतन पृथ्वी से जरा-सा कम है। इस ग्रह का मार्ग पृथ्वी के मार्ग की अपेक्षा और भी तीन करोड़ मील सूर्य के निकट है। यह भी कम नहीं है। यथोचित दूरी बचा कर चलता है, फिर भी इसके भीतर की खबर अच्छी तरह मालूम नहीं। इस लिये नहीं कि यह सूर्य के प्रखर प्रकाश के आवरण से ढका है। बुध सूर्य के प्रकाश से ढका हुआ है, किन्तु शुक्र अपने ही घने मेघ से ढका है। विज्ञानियों ने हिसाब करके देखा है कि इस ग्रह का उत्ताप पृथ्वी से प्राय: ६० डिग्री अधिक होना चाहिये। इतने उत्ताप से जल का कोई रूपान्तर नहीं होता, इसी लिये यह आशा की जा सकती है कि वहाँ जलाशय और मेघ दोनों का अस्तित्व है।

अब तक शुक्र ग्रह में आक्सिजन या जलीय वाष्प का कोई लक्षण नहीं पाया गया। उसके ऊपर के घने मेघावरण से भीतर की अवस्था ढकी हुई है। मेघ के ऊपरी सतह से जितना कुछ अन्दाज़ किया जाता है उससे प्रमाणित होता है कि उसके आक्सिजन की पूंजी बहुत ही कम है। वहां जिस गैस का स्पष्ट प्रमाण पाया जाता है, वह है आंगारिक गैस। मेघ के ऊपरी सतह पर उसकी मात्रा पृथ्वी की उस गैस से हजारों गुना अधिक है। पृथ्वी पर इस गैस का प्रधान उपयोग पेड़ पौधों के प्राण धारण में होता है अन्यान्य जीव जन्तुओं के प्राण धारण

के लिये आक्सिजन का व्यवहार होता है। प्राण धारण के इन दो ज़रूरी पदार्थों में से केवल एक ही शुक्र पर है। यह आश्चर्य की बात है कि शुक्र पर जलीय बाष्प का पता नहीं चलता। तो फिर सोचना पड़ता है कि शुक्र का घना मेघ किस चीज़ का है। सम्भव यह है कि मेघ के ऊंचे स्तर पर जल ठंडा होकर इतना जम गया है कि उस से बाष्प नहीं निकलता। शुक्र पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के निकट है, अतएव मान लिया जा सकता है कि ग्रह के ऊपरी सतह के उत्ताप से समुद्र से अत्य-धिक परिमाण में भाप उठा करता होगा और उसी से ऐसा घन मेघ जम गया होगा।

सौर मंडली में शुक्र ग्रह के बाद ही पृथ्वी का आसन है। पहले और ग्रहों की बात खतम करके बाद में पृथ्वी की चर्चा की जायगी।

पृथ्वी के बाद की पंगत में मंगल ग्रह का स्थान है। यह लाल रंग का ग्रह और सब ग्रहों की अपेक्षा पृथ्वी के सब से निकट है। इसका आयतन पृथ्वी के आठवें हिस्से के बराबर है। सूर्य के चारों ओर घूम आने में इस ६८७ दिन लगते हैं जिस रास्ते में यह सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहा है वह बहुत-कुछ अंडे की तरह का है; इसी लिये घूमते समय एक बार वह सूर्य के पास आता है और फिर दूर चला जाता है। अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूमने में इसे पृथ्वी से सिर्फ आध घंटा अधिक समय लगता है इसी लिये वहां के दिन रात हमारी पृथ्वी की

दिन रात से कुछ बड़े हैं। जिस परिमाण में इस ग्रह के ऊपर वस्तु है वह पृथ्वी की वस्तु मात्रा का एक दशमांश है, इसी लिये आकर्षण की शक्ति भी उसी परिमाण में कम है।

सूर्य के आकर्षण से मंगल ग्रह को जिस रास्ते चलना चाहिये था, उसकी अपेक्षा उसकी चाल में थोड़ा-सा फर्क है। पृथ्वी के आकर्षण के कारण ही इसकी यह दशा है। वजन के अनुसार आकर्षण के जोर से पृथ्वी मंगल ग्रह को जितना विचलित कर सकी है, उसी पर से हिसाब करके पृथ्वी का वजन ठीक किया गया है। इसी सिलसिले में सूर्य की दूरी भी जान ली गई है। क्यों कि मंगल को सूर्य भी खींच रहा है। सूर्य कितनी दूर रहेगा तो दोनों आकर्षणों का काटछांट हो कर मंगल का इतनी दूर विचलित होना संभव है, यह बात गणित करके निकाली जा सकती है। मंगल बहुत बड़ा ग्रह नहीं है, उसका वजन भी अपेक्षाकृत कम है, इसी लिये उसी मुताबिक आकर्षण का जोर न होने से आशंका थी कि वह हवा को खो देगा। किन्तु सूर्य से दूर होने के कारण वह इतना उत्ताप नहीं पाता जिस से परमाणु गर्म हो कर गायब हो जांय। किन्तु यह बात अब भी स्थिर नहीं हो सकी है कि उसकी हवा में किस किस वाष्प की मिलावट है।

सूर्य से मंगल की दूरी पृथ्वी की दूरी से अधिक है, इस लिये इस में कोई सन्देह नहीं कि यह ग्रह ठंडा है। दिन के समय विषुव प्रदेश में शायद कुछ गर्मी रहती हो किन्तु रातको

निःसन्देह बर्फ जमने से भी अधिक ठंड पड़ती है। बर्फ की टोपी पहने हुए उसके मेरु प्रदेश की तो बात ही क्या है।

पंडितों में मंगल ग्रह के संबंध में बहुत दिनों तक एक तर्क चलता रहा है। एक बार एक इटली-वासी विज्ञानी ने मंगल में लंबी लंबी लकीरें देखीं और निश्चय किया कि ग्रह के वासिन्दों ने निश्चय ही मेरु प्रदेश से बर्फ बिगलित पानी पाने के लिये ये लंबी लंबी नहरें निकाली हैं। फिर किसी किसी विज्ञानी ने कहा कि यह आंखों की ग़लती है। आज कल ज्योतिष्क लोक की ओर मनुष्य ने कैमेरा चलाया है। कैमरे से खींची हुई तस्वीर में भी काली लकीरें दिखी हैं। किन्तु वे कृत्रिम नहरें ही हैं और बुद्धिमान जीवों की ही कृतियाँ हैं, यह बात बिल्कुल अन्दाज़े पर कही गई है। अवश्य ही इस ग्रह पर प्राणी का रहना असंभव नहीं है, क्यों कि यहां हवा और जल हैं।

दो उपग्रह मंगल ग्रह के चारों ओर घूमा करते हैं, एक को एक चक्कर लगाने में ३० घंटे लगते हैं और दूसरे को ७॥ घंटे, अर्थात् मंगल ग्रह के एक दिन-रात में वह उसे प्रायः तीन बार घूम आता है। हमारे चाँद की अपेक्षा ये प्रदक्षिण का कार्य बहुत जल्दी खतम कर लेते हैं।

मंगल और वृहस्पति ग्रह के बीच में अनेक खाली जगह देख कर पंडित लोगों को संदेह हुआ और वे खोज में लग गये। पहले बहुत छोटे चोटे चार ग्रह दिखाई दिये। फिर देखा गया कि वहाँ बहुत हजार ग्रह-खंडों की भीड़ है। ये झुंड बाँध कर

सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं। उनका नाम ग्रहिका रख लिया जाय। अंग्रेजी में कहते है asteroids। जिसका दर्शन पहले मिला उसका नाम सीरिस (ceres) रखा गया। इसका व्यास चार सौ पच्चीस मील है। ईरोस (eros) नामक एक ग्रहिका है, सूर्य प्रदक्षिण के समय वह पृथ्वी के जितना निकट आती है, उतना और कोई ग्रह नहीं आता। ये ग्रहिकायें इतनी छोटी छोटी हैं कि इनके भीतर की कोई भी खबर हमें नहीं मिलती। इन सब का मिल कर जितना वजन है वह पृथ्वी के वजन का एक चतुर्थांश भी नहीं है। मंगल से भी कम है, नहीं तो मंगल के चलने के रास्ते में आकर्षण कर कुछ गड़बड़ी पैदा कर सकतीं।

ग्रहिकाओं को किसी समूचे ग्रह के खंड ही मान लिया जा सकता है। अपने भीतरी गोलमाल से या किसी पड़ोसी ग्रह के आघात से एक दिन इन के घर में विप्लव का समय गुज़रा है। वही इतिहास-विस्मृत दुर्योग अपने अख्यात कूड़ा-कर्कटों को सूर्य के चारों ओर घुमा कर किसी प्रकार मर्यादा की रक्षा कर रहा है।

इन ग्रहिकाओं के प्रसंग में और एक दल की बात बताना चाहिये। ये भी बहुत छोटे छोटे हैं और झुंड बांध कर एक निर्दिष्ट रास्ते में सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। ये उल्का पिंड हैं। पृथ्वी पर निरन्तर इनकी वर्षा ज़ारी है, धूलके कणों के साथ इनका जो राख मिल जाता है, वह नितान्त कम नहीं है।

पृथ्वी के ऊपर यदि हवा का चंदोवा न टंगा होता तो इन क्षुद्र शत्रुओं के आक्रमण से हमारी रक्षा न हो सकती।

दिन हो या रात, उल्कापात कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। लेकिन विशेष विशेष महीने की विशेष विशेष तिथियों को उल्काओं की बौछार अधिक होती है। २१ वीं अप्रैल, ६,१०, और ११ वीं आगस्त १२, १३, १४ और २७ वीं नवम्बर की रात को इस उल्कापात की आतिशबाज़ी देखने की चीज है। तिथि-क्षण का इस प्रकार का बंधा-सधा नियम देख कर विज्ञानी लोग इसका कारण खोजने लगे।

बात यह है कि उनका एक विशेष मार्ग है। किन्तु ग्रहों की तरह वे अकेले नहीं चलते। वे द्युलोक के दल-बद्ध टिड्डियों की जात के हैं। लाख लाख की संख्या में भीड़ किये हुए एक ही रास्ते चलते हैं। वर्ष के विशेष विशेष दिन को पृथ्वी का रास्ता ठीक उन्हीं जगहों पर पहुंच जाता है जहां उनकी जमात रहती है। पृथ्वी का आकर्षण वे सम्हाल नहीं सकते। निरन्तर इनकी झड़ी होती रहती है जो पृथ्वी की धूल में मिल जाती है। कभी कभी बड़ बड़े टुकड़े भी आ गिरते हैं और फट-फटा कर चारों ओर तहस-नहस कर देते हैं। सूर्य के इलाके में अनधिकार प्रवेश करने वाले धूमकेतुओं के दुर्भाग्य के ये निदर्शक हैं। ऐसा भी सुना जाता है कि युवावस्था में जब पृथ्वी के अन्तर में ताप अधिक था, उस समय अग्नि के उत्पात से पृथ्वी के भीतर की सामग्री इतने ऊपर छिटक गई थी कि

उसके टुकड़े पृथ्वी का आकर्षण पार करके आज भी सूर्य के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं, बीच बीच में अवसर पाते ही पृथ्वी उन्हें खींच लेती है। विशेष विशेष दिन को इन्ही उल्काओं की मानो न्योछावर सी होती रहती है।

इन अति क्षुद्रों के बाद वाले रास्ते पर ही अति वृहत् वृहस्पति ग्रह है।

इस वृहस्पति ग्रह के पास से कोई पक्की खबर की आशा करने के पहले दो बातें लक्ष्य करने की हैं। सूर्य से उसकी दूरी और उसका आयतन। पृथ्वी की दूरी ९ करोड़ मील से कुछ ऊपर है और वृहस्पति की दूरी ४८ करोड़ ३० लाख मील, अर्थात् पृथ्वी की दूरी से पांच गुने से भी अधिक। पृथ्वी सूर्य की जितनी गर्मी पाती है, वृहस्पति उसका सिर्फ सत्ताईसवां हिस्सा पाता है।

एक समय ज्योतिषियों ने अन्दाज़ किया था कि वृहस्पति ग्रह पृथ्वी के समान इतना ठंडा नहीं हो गया है, उसके पास अपनी गर्मी का संचय काफ़ी अधिक है। उसके वायुमण्डल में जो चञ्चलता सदा दिखाई देती है उसका कारण उसके भीतर का ही ताप है। पर जब वृहस्पति की ताप-मात्रा का हिसाब लगाना सम्भव हुआ तब देखा गया कि ग्रह बहुत ठंडा है। उस के ताप की मात्रा बर्फ जमने की ठंडक के और २०० फारेनहाइट डिग्री नीचे है। इतनी अधिक ठंडक में वृहस्पति के ऊपर जलीय वाष्प रह ही नही सकता। परीक्षा करके उसके

वायुमण्डल में दो गैसों का पता पाया गया। एक अमोनिया, जिस की तीव्र गन्ध नौसादर में चौंका देती है, और एक आलेया गैस (Methane), जो मैदान में राहगीरों का राह भुलाने में नामवरी हासिल कर चुकी है। नाना युक्तियों से अभी तक यह स्थिर किया गया है कि वृपस्पति का शरीर कठोर है, प्रायः पृथ्वी के समान ही घन। इस के ऊपर १६ हजार मील तक बर्फ के स्तर जमे हुए हैं। इस बर्फ पुंज के ऊपर ६००० हजार मील तक वायु का स्तर है। इतने बड़े पुञ्जीभूत वायु के प्रबल दबाव से हाईड्रोजन और हीलियम के सिवा अधिकांश गैस ही तरल हो जाती हैं। इस वायव्य और तरलपने के कारण सदा असामञ्जस्य घटता रहता है और फलस्वरूप वायुमण्डल सर्वदा चंचल बना रहता है,—यह अनुमान सच जान पड़ता है।

वृहस्पति विशाल-काय ग्रह है, उसके व्यास की लंबाई प्रायः ९० हजार मील है, पृथ्वी के ग्यारह गुना।

सूर्य की प्रदक्षिणा करने में वृहस्पति को प्रायः बारह वर्ष लग जाते हैं। दूर रहने के कारण उसका कक्ष-मार्ग निस्सन्देह पृथ्वी के मार्ग की अपेक्षा बहुत बड़ा है, पर वह चलता भी है काफी धीरे धीरे। पृथ्वी जहां एक सेकेंड में १९ मील चलती है तहां वह केवल आठ मील ही चलता है। किन्तु उसका स्वावर्तन अर्थात् अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूमना तेजी के साथ होता है। इतने विशाल देह को घुमाने में उसे केवल दस घंटे लगते हैं। हमारे एक अहोरात्र में उसके दो दिन और दो

रातें बीत जाती हैं और फिर भी कुछ बाकी रह जाता है।

वृहस्पति के परिवार में दस उपग्रह हैं। पृथ्वी के चाँद की अपेक्षा इनके प्रदक्षिणा करने का वेग कहीं अधिक तेज है। पहले चार उपग्रह तो हमारे चाँद के ही समान बड़े हैं, उन पर भी अमावस्या, पूर्णिमा और क्षय-वृद्धि होती रहती हैं।

पहले पहल वृहस्पति के चन्द्र ग्रहण से ही यह स्थिर हुआ कि प्रकाश एक सेकेंड में १८६००० मील के वेग से दौड़ा करताहै। गणनानुसार जिस समय वृहस्पति का चन्द्र ग्रहण घटना चाहिये, प्रत्येक बार उसके कुछ देर बाद दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि उसका प्रकाश हमारी आंखों तक पहुंचने में कुछ देरी करता है। एक निर्दिष्ट परिमाण समय ले कर प्रकाश चलता है क्यों कि ऐसा अगर न होता तो ग्रहण लगने के साथ ही साथ वह दिखाई देता। पृथ्वी से इस उपग्रह की दूरी माप कर ग्रहण की मीयाद खत्म होने के बाद उसके प्रत्यक्ष होने में कितनी देर लगी है, यह लक्ष्य करके पहले पहल प्रकाश की गति का निर्धारण हुआ।

वृहस्पति का अपना प्रकाश नहीं है, इस बात का प्रमाण उसके दस उपग्रहों के ग्रहण के समय मिलता है। विचार कर देखो कि ग्रहण होता कैसे है। किसी एक अवसर पर जब सूर्य पीछे पड़ जाता है और गृह, प्रकाश को रोक कर, उसके सामने आ जाता है और उसके भी सामने उसी की छाया में उपगृह

होता है तभी सूर्य का प्रकाश न मिलने के कारण उपग्रह पर ग्रहण लग जाता है। किन्तु मध्यवर्ती ग्रह के पास यदि अपना प्रकाश होता तो वह उपग्रह को आलोकित कर सकता और ग्रहण हो ही नहीं सकता। हमारे चांद के ग्रहण के विषय में भी यही बात लागू है। ज्योतिहीन पृथ्वी जब चन्द्रमा के सामने से सूर्य को आड़ में छिपा लेती है तो उस समय वह चन्द्रमा को छाया ही दे सकती है, प्रकाश नहीं।

वृहस्पति के बाद की पंक्ति में शनि ग्रह है।

यह ग्रह सूर्य से ८८ करोड़ ६० लाख मील दूर है। सूर्य की एक प्रदक्षिणा करने में इसे २६॥ वर्ष लगते हैं। शनि का वेग वृहस्पति से भी कम है—एक सेकेन्ड में केवल ६ मील। वृहस्पति को छोड़ कर सौरजगत् के अन्य ग्रहों की अपेक्षा आकाश में यह बहुत बड़ा है; इसका व्यास पृथ्वी के व्यास से प्रायः ६ गुना है। पृथ्वी से नौ गुना बड़ा हो कर भी अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाने में उसे पृथ्वी के आधे से भी कम समय लगता है। इतने जोर से घूमने के कारण उस वेग के दबाव से इसका आकार कुछ चपटा-सा हो गया है। इतना बड़ा इसका आकार है फिर भी इसका वजन पृथ्वी से सिर्फ ६५ गुना अधिक है। इतना हल्का होने के कारण ही विशाल-काय हो कर भी पृथ्वी की अपेक्षा इसका आकर्षण अधिक नहीं हो सका। एक मेघ का आवरण इसे घेरे हुए है जिसका आकार बीच बीच में बदलता दिखाई देता है।

शनि और पृथ्वी के आयतन की तुलना

शनि के दस उपग्रह हैं। उन में जो सब से बड़ा है वह आयतन में बुध ग्रह से भी बड़ा है। यह प्रायः ८ लाख मील दूर रहता है और इसकी प्रदक्षिणा १६ दिन में समाप्त होती है।

शनि ग्रह की वेष्टनी की वर्णच्छटा की परीक्षा करके देखा गया है कि इसका जो अंश ग्रह के निकट रहता है उसका चलन-वेग ग्रह के दूरवर्ती अंशों की अपेक्षा बहुत अधिक है। यह वेष्टनी अगर अखण्ड चक्र की भाँति होती तो घूमनेवाले पहिये के नियमानुसार वेग बाहर की ओर ही अधिक होता। किन्तु शनि ग्रह की वेष्टनी अगर खण्ड खण्ड वस्तुओं की बनी हो तो इन वस्तुओं के जो दल ग्रह के पास होंगे वे ही आकर्षण के जोर से अधिक तेजी से घूमेंगे। इन लाख-लाख टुकड़े-उपग्रहों के अतिरिक्त दस बड़े बड़े उपग्रह अलग अलग रास्ते में शनिग्रह की प्रदक्षिणा कर रहे हैं।

किस प्रकार इस ग्रह के चारों ओर झुंड-के-झुंड छोटे टुकड़ों की सृष्टि हुई, इस संबंध में विज्ञानियों का जो मत है उसी का कुछ अंश यहां लिखा जा रहा है। ग्रह के प्रबल आकर्षण में पड़ कर कोई कोई उपग्रह अपना गोल आकार नहीं बचा रख सकते, उनका चेहरा आखिरकार बहुत-कुछ अंडे के समान हो जाता है। अन्त में एक ऐसा समय आता है जब अधिक बर्दाश्त न कर सकने के कारण उपग्रह टूट कर दो खंड हो जाता है। ये दोनों छोटे टुकड़े और भी टूटते रहते हैं, इस प्रकार एक ही उपग्रह से लाख लाख टुकड़ों का हो जाना असंभव नहीं है।

चाँद की भी एक दिन यह दशा होने को है। विज्ञानी लोग कहते हैं कि प्रत्येक गृह को एक अदृश्य मंडली का बेड़ा घेरे हुए है, इसे खतरे का घेरा कहते हैं। इस के भीतर आ पड़ते ही उपगृहों का शरीर फूल उठता है, पहले वह अंडे की तरह लंबा-सा आकार धारण करता है फिर टूटने लगता है। आखिर-कार ये टुकड़े झुंड बांध कर गृह के चारों ओर चक्कर लगाने लगते हैं। विज्ञानियों के मत से वृहस्पति का प्रथम उपगृह इस खतरे के घेरे के पास आ गया है, और कुछ दिन बाद इस घेरे में घुसते ही उसके टुकड़े हो जाँयगे। उस समय शनिगृह की तरह वृहस्पति को भी चारों ओर से एक उज्ज्वल वेष्टनी घेर लेगी। शनि के चारों ओर जो वेष्टनी है उसकी सृष्टि के संबंध में पंडितों का अनुमान है कि शनिका एक उपगृह घूमते-घूमते इस खतरे घेरे में आ घुसा था। नतीजा यह हुआ कि उपगृह टूट कर खंड खंड हो गया और आज भी इस गृह की परिक्रमा कर रहा है।

चाँद पृथ्वी के खतरे के घेरे से अनेक दूर है, इसी लिये उसमें जो परिवर्त्तन हुए हैं वे बहुत अधिक नहीं हैं। पृथ्वी के आकर्षण के वेग से वह धीरे धीरे आगे बढ़ता आ रहा है, इसके बाद जब इस घेरे के इलाके में प्रवेश करेगा तो टुकड़े-टुकड़े हो जायगा और ये टुकड़े पृथ्वी-गृह को घेर कर शनि गृह की नकल करते रहेंगे ; उस समय चाँद पर भी 'शनि की दशा' होगी।

शनि सूर्य से वृहस्पति की अपेक्षा कहीं अधिक दूर है— इसी

लिये ठंडा भी बहुत ज्यादा है। इसके बाहर का वायुमण्डल बहुत कुछ वृहस्पति के समान है, केवल अमोनिया का उतनी अधिक मात्रा में होना नहीं पाया गया, आलेयागैस (Methane) का परिमाण शनि पर वृहस्पति की अपेक्षा अधिक है। शनि यद्यपि आयतन में बहुत अधिक है तथापि उसका वजन उतनाही भारी नहीं। वृहस्पति के समान इसका वायुमंडल भी गहरा होना चाहिये, क्यों कि इसके आकर्षण को तरह देकर हवा के भागने का कोई उपाय नहीं हैं। इस में हवा का परिमाण अत्यधिक होने के कारण ही इसका औसत वजन इसके आकार-प्रकार की तुलना में इतना कम है। इसके उपर प्रायः ६००० मील तक बर्फ जमा हुआ है– और उसके ऊपर १६००० मील तक हवा है।

शनिग्रह के बाद की पंक्ति में यूरेनस नामक ग्रह है जिसके वहाँ होने की खबर नई ही मिली है।

इस ग्रह के संबंध में कुछ विशेष विवरण जानना अब भी संभव नही हुआ। इसका व्यास पृथ्वी से ६४ गुना है। सूर्य से १७८ करोड़ २८ लाख मील दूर रह कर चार मील प्रति सेकेंड की चाल से ८४ वर्ष में एक बार उसकी परिक्रमा कर रहा है। आकार तो इसका इतना विशाल है, फिर बहुत दूर होने के कारण बिना दूरबीन के इसे देखा ही नहीं जाता। जिस पदार्थ से यह ग्रह बना है, वह पानी से कुछ ही घना है, इसी लिये पृथ्वी से कई गुना बड़ा होने पर भी इसका वजन पृथ्वी के सिर्फ पंद्रह-गुना ही है।

१० घं० ४० मि० में यह ग्रह एक बार अपनी धुरी पर घूम रहा है, चार उपग्रह अपने-अपने रास्ते में निरन्तर इसकी परिक्रमा कर रहे हैं।

यूरैनस के आविष्कार के कुछ ही दिन बाद पंडितों ने इस ग्रह का बेहिसाबी चाल-चलन देख कर निश्चय किया कि इस ग्रह ने किसी और के आकर्षण में पड़ कर पंथ का नियम तोड़ा है। खोजते खोजते वह ग्रह भी निकला। उसका नामकरण हुआ नेपच्यून।

सूर्य से इसकी दूरी २७९ करोड़ ३० लाख मील है और प्रायः १६४ वर्ष में यह सूर्य की एक प्रदक्षिणा करता है। इसका व्यास प्रायः ३३००० मील का अर्थात् यूरैनस से कुछ बड़ा है। दूरबीन से एक छोटी-सी हरी थाली की तरह दिखाई देता है। इसका एक उपग्रह २ लाख २२ हजार मील दूर रह कर ५ दिन २१ घंटे में इस के चारों ओर एक बार घूम आता है। उपग्रह की दूरी और इसके आयतन पर से हिसाब लगा कर निश्चय किया गया है कि इसका वस्तु पदार्थ पानी से कुछ भारी है और वजन में प्रायः यूरैनस के बराबर है। यह बात अब भी एकदम निश्चित नहीं हुई कि इस ग्रह के अपनी धुरी पर एक बार घूमने में कितना समय लगता है।

नेपच्यून के आकर्षण से यूरैनस को जिस नये रास्ते पर चलना चाहिये था, हिसाब करके देखा गया कि यूरैनस ठीक उस रास्ते पर नहीं चल रहा है। इस से यह समझा गया

कि नेपच्यून के सिवा भी इस गृह के गतिपथ के बाहर कोई और एक ज्योतिष्क वर्त्तमान है। सन् १९३० में एक नया गृह और निकल आया। इसका नाम प्लूटो रखा गया है। यह गृह इतना छोटा और इतनी दूर है कि दूरबीन की सहायता से भी यह बड़ी कठिनता से दिखाई देता है। कैमेरा से चित्र खींच कर इसका अस्तित्व निःसन्देह सिद्ध कर दिया गया है। यह गृह ही सूर्य से सब से अधिक दूरी पर है, इसी लिये यह प्रकाश और गर्मी इनती थोड़ी मात्रा में पा रहा है कि हम उसकी अवस्था की कल्पना भी नहीं कर सकते।

लगभग ३६५ करोड़ मील की दूरी से ढाई सौ वर्षों में यह गृह सूर्य की एक प्रदक्षिणा समाप्त करता है।

प्लूटो गृह बहुत छोटा है, इस लिये उसके आकर्षण का वेग भी बहुत कम है। नतीजा यह हुआ है कि वह अपनी हवा को भी नहीं सम्हाल सकता। वह इसके हाथ से जाती रही है। इसकी ताप मात्रा २३० डिग्री सेंटीग्रेड से भी नीचे होगी। इतनी सर्दीमें अत्यन्त दुरन्त गैस भी तरल, यहाँ तक कि ठोस हो जाती है। वहां अंगारिक गैस, आमोनिया, नाईट्रोजन, प्रभृति वायव्य पदार्थ भी जम कर वर्फ बन गये हैं और उन से निश्चय ही गृह ढक गया है। किसी-किसी का मत है कि सौर लोक की अन्तिम सीमा पर कई छोटे छोटे ग्रह बिखरे हुए हैं, प्लूटो उन्हीं में से एक है। लेकिन इस मत के लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला है, कभी मिलेगा भी कि नहीं, कौन

जाने। आज की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली दूरबीन यदि उस दूरत्व की यवनिका (पर्दा) उठा सके तभी संशय का समाधान होगा।

भूलोक

अन्य ग्रहों के आकार-प्रकार और चलने फिरने के सम्बन्ध में बहुत ही कम खबरें इकट्ठी की जा सकी हैं, अकेली पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जिसके शरीर की गठन-रीति ठीक तौर पर बहुत कुछ जानी जा सकी है। गैसीय अवस्था पार करके जब से उसका शरीर कठोर हुआ है तभी से उसके शरीर में इतिहास के नाना चिह्न अंकित होते चले आये हैं।

पृथ्वी के ऊपर का स्तर किसी चीज़ से ढका न होने के कारण शीघ्र ही ठंडा हो कर कड़ा हो गया, और भीतर का स्तर गर्म होने का कारण वहाँ तरल और गैसीय पदार्थ ही रह गये। दूध की मलाई ठंडा होते होते जिस प्रकार सिकुड़ जाती है उसी प्रकार पृथ्वी का ऊपरी सतह भी ठंडा होते होते सिकुड़ने लगा। सिकुड़ने पर दूध की मलाई जिस मात्रा में ऊबड़-खाबड़ हो जाती है उसकी तरफ़ हमारा ध्यान ही नहीं जाता, किन्तु सिकुड़ी हुई पृथ्वी की असमानता ऐसी मामूली नहीं है कि उसे हँस कर उड़ा दिया जाय। चूंकी नीचे का स्तर इस असमानता को ढोने योग्य पक्का नहीं हुआ था इस लिये अच्छा आधार न मिलने के कारण ऊपर का कडा स्तर दब-धँस कर

ऊंचा-नीचा होता रहा, इससे पहाड़-पर्वत दिखाई दिये। बूढ़े आदमी के माथे का चमड़ा सिकुड़ कर जिस प्रकार वलि पड़ जाती है उसी प्रकार मानों ये पृथ्वी के ऊपरी चमड़े की बलियाँ हैं। सारी पृथ्वी की वृहत् गभीरता की तुलना में ये पहाड़ पर्वत मनुष्य के चेहरे के वलिचिह्न से कम ही हैं, अधिक नहीं।

प्राचीन युग की पृथ्वी के सिकुड़े हुए ऊबड़-खाबड़ स्तर में कहीं गड्ढे हो गये और कहीं पहाड़ निकल आये। गड्ढे तब भी पानी से भरे नहीं थे। क्यों कि उस समय पृथ्वी की गर्मी के कारण पानी भी भाप के रूप में ही था। धीरे धीरे मिट्टी ठंडी हुई, वाष्प पानी हो गया। उसी पानी से भर कर गड्ढे समुद्र हो गये।

पृथ्वी के बहुत से पानी के भाप तो तरल हो गये, किन्तु हवा की प्रधान गैसें वैसे ही रह गईं। उन्हें तरल करना सहज नहीं। क्यों कि जितनी सर्दी में वे तरल होते उतनी सर्दी से पानी जम कर बर्फ हो जाता और पृथ्वी बर्फ के कवच से आच्छादित हो रहती। इस औसत परिमाण की गर्मी-सर्दी से आक्सिजन, नाईट्रोजन प्रभृति हवा के गैस वाले पदार्थ सहज ही चल-फिर रहे हैं और हम साँस लेकर जी रहे हैं।

पृथ्वी के भीतर की ओर का संकुचन अब भी एक दम बन्द नहीं हो गया है। उसी के हिलने के कारण अचानक कहीं नीचे की जगह कुछ हट जाती है तो ऊपर का कड़ा आवरण टूट कर उसे दबा देता है, इस प्रकार पृथ्वी के ऊपरी सतह को हिला

देता है और भूकम्प हो जाता है। फिर किसी किसी स्थान पर टूटे हुए दबाव से नीचे का तप्त तरल पदार्थ ऊपर उछल आता है।

पृथ्वी की भीतरी अवस्था जानने के लिये जितना खोदना जरूरी है, उतने नीचे तक खुदाई अब भी नहीं हुई। कोयले की खान खोजने के लिये मनुष्य पृथ्वी के जितना नीचे उतरा है वह एक मील से बहुत अधिक नहीं है। इससे केवल इतनी ही खबर मिली है कि जितना ही पृथ्वी के नीचे की ओर जाया जाता है उतना ही, एक निर्दिष्ट मात्रा में, ताप बढ़ता जाता है। और भी नीचे कितनी गर्मी है, यह बात ज्वालामुखी पहाड़ों का ताण्डव देख कर समझा जा सकता है। किन्तु इन तप्त उत्सों की गहराई भी पृथ्वी की मोटाई की तुलना में बहुत ही कम है। भूकम्प से पृथ्वी के भीतर की बहुत-सी खबरें मनुष्य को मालूम हुई हैं।

मिट्टी के नीचे कहीं उथल पुथल हो तो वहां से तरंगों के चक्र, एक के बाद दूसरे, आगे बढ़ते रहते हैं। सीस्मोग्राफ (seismograph) अर्थात् भूकम्प-लिपि नामक एक यंत्र निकला है। उसके पट पर इन ऊंची नीची तरंगों के चिह्न अंकित होते हैं, उससे उनके कांपने का वेग जान पड़ता है।

भिन्न भिन्न देश की प्रयोगशालाओं में यह यंत्र रखा गया है। जिस समय जिस सीस्मोग्राफ में भूकम्प की रेखा अंकित हुई है, उस पर से हिसाब करके देखा जाता है कि पृथ्वी के कठिन स्तर

के भीतर से कितने वेग से कम्पन चला रहा है। पृथ्वी का समूचा भीतरी हिस्सा यदि एक ही पदार्थ से बना होता तो इस कम्पन वेग के मापने में अन्तर न पड़ता। लेकिन फर्क पड़ते देखा गया है। पृथ्वी की गहराई में कम्पन की तरंगें ऊपरी सतह की अपेक्षा अधिक जोर से चलती हैं। असल में पृथ्वी के भिन्न भिन्न स्तरों में भूकम्प का मान भिन्न भिन्न होता है। तरल या गैसीय पदार्थ के भीतर से कम्पन की तरंगें जिस प्रकार फैलती हैं, कठिन पदार्थ से हो कर उस प्रकार नहीं फैल पातीं।

समूची पृथ्वी अगर जलमय होती तो उसका वजन जो कुछ होता उस से पांचगुना भारी जल-स्थल-मयी इस पृथ्वी का वजन हैं। उस के ऊपरी सतह का पत्थर जल से तिगुना घना है। केवल ऊपरी दबाव से उनका भार बढ़ गया हो सो बात नहीं है, वहां के वस्तु-पुञ्ज का भार स्वभावतः ही अधिक है। भूकम्प की गवाही से जाना जाता है कि पृथ्वी के केन्द्रस्थल में दो हजार मील तक उत्तप्त तरल पदार्थ है—जिस का अधिकांश ही गला हुआ लोहा है, ऐसा अन्दाज किया गया है। इस तरल पदार्थ को घेरे हुए पत्थर का जो स्तर है वह पानी से चारगुना भारी है।

जो हवा पृथ्वी को घेरे हुए है उसका ७८ फी सदी नाईट्रोजन और २१ फी सदी आक्सिजन है। हाईड्रोजन तथा और कई गैसें अत्यन्त मामूली मात्रा में हैं। आक्सिजन बड़ा मिलनसार गैस है, लोहे के साथ मिलकर मोर्चा लगा देता है, अंगार

पदार्थ के साथ मिल कर आग जला देता है- इस प्रकार निरन्तर वायु मण्डल में उसका बहुत हिस्सा खर्च होता रहता है। इधर पेड़ पौधे हवा के अंगाराम्ल गैस से अपने मतलब का अंगार वसूल करके उसका आक्सिजन वाला हिस्सा हवा को लौटा देते हैं। ऐसा न होता तो अंगाराम्ल गैस से ही पृथ्वी भर जाती और आदमी साँस लेने की भी हवा न पा सकता।

आसमान में बहुत ऊंचाई तक हवा में विशेष परिवर्तन नहीं होता। और भी अधिक ऊंचे जाने पर जो गैसें मिल कर हवा बनती हैं उनका बहुत कुछ वहाँ नहीं पहुंच पाता। खूब सम्भव, सब से हल्की दो गैसें, अर्थात् हीलियम और हाईड्रोजन से ही वहां की हवा बनी है।

बराबर घनत्व कम होते जाने के कारण हवा बहुत ऊपर तक उठ गई है। बाहर से पृथ्वी पर जो उल्का पिण्ड गिरा करते हैं, वे पृथ्वी की हवा से रगड़ खा कर जल उठते हैं, उन में से अधिकांश का यह जलना १२० मील ऊपर दिखाई देता है। इसलिये यह मान लेना होगा कि उसके और भी ऊपर बहुत दूर तक हवा है जिसके भीतर से आते आते अन्त में ये इस जलन की अवस्था को प्राप्त होते हैं।

सूर्य का प्रकाश नौ करोड़ मील पार करके पृथ्वी तक आता है। ग्रह-वेष्टन-कारी आकाश की शून्यता को पार करके आते समय तेज का बहुत अधिक क्षय नहीं होता। अर्थात् दस हजार डिग्री गर्मी ले कर वह वायुमण्डल के सीमान्त देश

में पहुंचता है। इतने प्रचण्ड धक्के से वहां की हवा के परमाणु निश्चय ही चूर्ण-विचूर्ण हो जाते हैं, एक भी परमाणु पूरा नहीं रहता। हवा के सर्वोच्च अंश में टूटे हुए परमाणुओं का जो स्तर रचित हुआ है उसे एफ् २ (F 2) नाम दिया गया है।

वहां खर्च होने से बची हुई सूर्य की किरणें नीचे के घनतर वायुमण्डल पर आक्रमण करती हैं, वहां भी टूटे परमाणुओं के स्तर का उद्भव होता है, इसे एफ १ (F, 1) स्तर नाम दिया गया है।

और भी नीचे और भी घनी हवा में सूर्य किरणों के आघात से पंगु बने हुए परमाणुओं का एक स्तर है जिसे ई (E) स्तर कहते हैं।

सूर्य-किरणों की बैंगनी-पार की रश्मि का बल बहुत कुछ खर्च हो जाता है, वह निःस्व हो कर नीचे की हवा तक बहुत थोड़ी मात्रा में पहुंच पाती है। यही हमारे लिये गनीमत है। अगर वह अधिक आती तो सम्हालना मुश्किल हो जाता।

सूर्य किरणों के सिवा और भी कई 'काले पहाड़' दूर से हवा को अदृश्य गदाघात करने के लिये आया करते हैं। जैसे उल्का, इनकी बात पहले ही बताई गयी है। इनकी रगड़ से तीन हजार से लेकर सात हज़ार फारेनहाइट डिग्री तक का ताप जाग पड़ता है ; इससे बैंगनी-पार के प्रकाश के तीक्ष्ण बाण तरकस से निकल पड़ते हैं और हवा के परमाणुओं के देह पर बरस कर उन्हें जला कर छारखार कर देते हैं। इसके

सिवा एक और रश्मि के बरसने की बात पहले ही बताई गई है। यह कस्मिक रश्मि है। संसार में यही सब से प्रबल शक्ति का वाहन है।

पृथ्वी की हवा में आक्सिजन, नाईट्रोजन आदि गैसों के कोटि कोटि परमाणु भरे पड़े हैं। वे अत्यन्त तेजी के साथ निरन्तर चक्कर मारते रहते हैं, आपस में धक्कामुक्की और ठेलाठेली तो चल ही रही है। जो कण हल्के हैं उनके दौड़ने का वेग अधिक होता है। सारे दल का जो वेग होता है उसकी अपेक्षा स्वतंत्र छिटके हुए परमाणु का वेग बहुत अधिक होता है। इसीलिए पृथ्वी के बाहरी आंगन की सीमा से हाईड्रोजन के खुचरे अणु प्रायः ही पृथ्वी का आकर्षण काट कर बाहर को भाग जाते हैं। लेकिन आक्सिजन और नाईट्रोजन के अणु कणों की गति दल के बाहर कभी भी अधीर भगोड़ों की तेजी नहीं पाती। इसी लिये पृथ्वी के वायुमंडल में इनकी कमी नहीं पड़ती। केवल हाईड्रोजन ही, जो पृथ्वी की तरुणावस्था में उसकी सब से बड़ी गैसीय सम्पत्ति था, धीरे धीरे अपना बहुत कुछ खो चुका है।

बड़े बड़े पंखवाले पक्षी पंखो को यों ही खुला रख कर देर तक आसमान में बहते-से रहते हैं, इस से जान पड़ता है कि हवा में इतना घनत्व जरूर है कि वह इन पक्षियों का आधार बन सकता है। असल में, कठिन और तरल पदार्थों की भाँति हवा का भी वजन पाया जाता है। मिट्टी के ऊपर कई मील तक हवा है, इस हवा का दबाव एक फीट लंबे और इतने ही चौड़े

पदार्थ पर प्राय: २७ मन से भी अधिक पड़ता है। एक साधारण आदमी के शरीर पर इसका दबाव प्राय: ४०० मन से अधिक पड़ता है। फिर भी हम उसका अनुभव नहीं कर पाते। जैसे ऊपर से वैसे ही नीचे से, जैसे दायें से वैसे ही बायें से, समान भाव से हवा का दबाव और धक्का लग रहा है, इसी लिये हवा का भार हमें कष्ट नहीं देता।

पृथ्वी का वायुमंडल अपने आवरण से दिन के समय सूर्य की गर्मी को बहुत-कुछ रोक रखता है, और रात के समय महा-शून्य की प्रबल सर्दी को भी बाधा पहुंचाता है। चांद के शरीर पर हवा की ओढ़नी नहीं है, इसीलिये वह सूर्य की गर्मी से खौलते हुए पानी के समान गर्म हो जाता है। और ग्रहण के समय पृथ्वी ज्यों ही उस पर अपनी छाया विस्तार करती है त्यों ही देखते देखते वह ठंडा हो जाता है। हवा होती तो वह गर्मी को रोक रखती। चांद को केवल यही अभाव नहीं है, हवा न होने के कारण वह एक दम गूंगा है, कहीं भी ज़रा सा शब्द होने का उपाय नहीं। विशेष भाव से हिलने पर हवा में नाना आयतन की सूक्ष्म तरंगें उठती हैं, वे ही हमारे कानके भीतरी पर्दे पर नाना भाँति के कम्पन का आघात करती हैं, और यही तरंगें नाना भाँति की आवाज़ बन कर हमारे कर्णों के गोचर होती रहती हैं। हवा का एक और भी काम है। वह फराश की तरह सूर्य की उग्र किरणों को बिछा कर फैला देती है, नहीं तो जहां धूप पड़ती सिर्फ वहीं पर प्रकाश हो सकता,

छाया नाम की कोई चीज़ ही न होती। तीव्र प्रकाश के बगल में ही घोर अन्धकार होता। वृक्ष की चोटी की धूप से आंखें चौंधिया उठतीं और नीचे के तलदेश में निविड़ काला अन्धकार हुआ रहता। घर की छत पर दोपहरी की धूप दमकती रहती और घरके भीतर होती अमावस्या की घोर अर्धरात्रि। दिया जलाने की बात सोचना भी गलत होता क्यों कि पृथ्वी की हवा में जो आक्सिजन गैस है उसी से सब चीज़ें जला करती हैं। (जब हवा ही नहीं होती तो आक्सिजन भी न होता और आक्सिज न होता तो दिया तो क्या कोई भी चीज़ नहीं जल सकती।)

हम लोग प्रश्वास से हवा का आक्सिजन खींचते हैं। उसके अणु हमारे प्राणवस्तु के अणु के साथ मिलकर धीरे धीरे उसे अदृश्य ज्वाला से जलाते रहते हैं। इसी लिये हम जब तक जीते रहते हैं तब तक हमारा खून गर्म रहता है।

हवा को यौगिक पदार्थ नहीं कह सकते, असल में वह मिलावटी पदार्थ है। उस में नाना गैसें जमा हुई हैं, पर वे मिल कर एक नहीं हो गईं। हवा में जिस मात्रा में आक्सिजन है उस से तिगुना नाईट्रोजन है। यदि केवल आक्सिजन ही होता तो हमारा प्राणवस्तु जल जल कर कब का समाप्त हो गया होता। यह प्राणवस्तु कुछ अंश में जलता है और कुछ अंश में जल नहीं पाता। इसीलिये हम दो आतिशय्य के बीच में रह कर जी सकते हैं।

सारा वायुमंडल पानी से भीजा हुआ-सा है। मेघ में जितना जल रहता है उस से कहीं अधिक रहता है हवा में। हमारा सारा शरीर थोड़ा थोड़ा करके इस पानी को सोख रहा है। अत्यन्त सूखी हवा में चमड़ा सूख कर जब फटता रहता है तब इसका प्रमाण मिलता है।

ऊपर के वायुमंडल के टूटे हुए परमाणुओं के वैद्युत-स्तर की बात पहले ही कह चुका हूं। इसके सिवा सहज हवा के भी दो स्तर हैं। इसका जो पहला स्तर पृथ्वी के सब से अधिक नजदीक है उसका वैज्ञानिक नाम है ट्रोपोस्फियर (troposphere), हिंदी में इसे क्षुब्ध स्तर कह सकते हैं। इसकी चौड़ाई पाँच से लेकर दस मील से अधिक नहीं है। सारे वायुमंडल के माप की तुलना में इस क्षुब्ध स्तर की ऊंचाई बहुत ही कम है, लेकिन हवा के समस्त पदार्थों का प्रायः नब्बे प्रतिशत इसी में है। इसी लिये अन्य स्तरों की अपेक्षा यह स्तर बहुत घना है। पृथ्वी से एक दम सटा हुआ होने के कारण उसकी गर्मी की छूत उसे लगी ही रहती है। उस उत्ताप के बढ़ने-घटने से हवा यहां निरन्तर दौड़ धूप करती रहती हैं। इसी लिये केवल इसी स्तर में आंधी और वर्षा होती रहती है। इसके और ऊपर जो स्तर है उसमें पृथ्वी की गर्मी आंधी-तूफान की रफ्तनी नहीं कर पाती। इसीलिये वहां की हवा शान्त है। पंडितों ने इसका नाम दिया है स्ट्रैटोस्फीयर (stratosphere), हिंदी में स्तब्ध स्तर कहा जा सकता है।

आदि सूर्य से जिस प्रकार पृथ्वी निकल आई है उसी प्रकार वाष्प-देही आदिम पृथ्वी से चाँद निकल आया है, नियम दोनों जगह एक ही है। इसके बाद करोड़ों वर्ष बीत गये, पृथ्वी ठंडी हो कर कड़ी हो गई, चाँद भी ऐसा ही हो गया है।

२ लाख ३९ हजार मील दूर रह कर २७ दिन और ८ घंटे में चंद्रमा पृथ्वी की एक परिक्रमा कर रहा है। इस परिक्रमा के समय वह एक ही पीठ पृथ्वी की ओर फिरा रखता है। इस का व्यास प्रायः २१६० मील लंबा है और इसका उपादान जल से प्रायः ३॥ गुना भारी है। अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों की तुलना में पृथ्वी से इसकी दूरी खूब ही कम है, इसलिये हम इसे इतना उज्ज्वल और बड़ा देखते हैं। अस्सी चाँदों को अगर एक साथ तौला जाय तो उनका वजन पृथ्वी के बराबर होगा। दूरबीन से चांद को देखने से स्पष्ट ही दिखता है कि वह पृथ्वी के पदार्थों के समान ही पदार्थों से बना है। उसके ऊपर बड़े बड़े गह्वर और बड़े बड़े पर्वत हैं।

पृथ्वी के आकर्षण से ही चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा है। एक चक्कर लगाने में उसे एक महीने से कुछ कम समय लगता है। औसतन् उसकी चाल एक सेकेंड में आध मील से ज्यादा नहीं है। पृथ्वी इतनी देर में २० मील दौड़ जाती है। अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूमने में उसे एक

महीने के बराबर ही समय लगता है। उसके दिन और वर्ष एक ही समान धीर मंथर वेग से चलते हैं।

चाँद के वजन पर से हिसाब लगा कर देखा गया है कि यदि किसी चीज़ का वेग प्रति सेकेण्ड डेढ़ मील हो तो वह चाँद के आकर्षण से निकलकर बाहर निकल जा सकता है। चाँद जिस परिमाण में धूप तापता है उससे उसकी तपी हुई पीठ पर हवा इतना गर्म हो उठी होगी कि वह अपनी हवा के परमाणुओं को रोक नहीं सका होगा, इसी लिये वे सब निकल पड़े होंगे। जहां हवा का दबाव नहीं है वहां पानी खूब शीघ्र ही भाप बन जाता है। भाप होने के साथ ही साथ पानी के परमाणु गर्मी से चंचल हो कर चंद्रमा का बंधन छिन्न करके बाहर चले गये होंगे। जहाँ जल भी नहीं, वायु भी नहीं, वहां किसी का जीवन रह सकता है, यह बात हम लोगों की जानी हुई नहीं है। चाँद को एक पिण्डीभूत मरुभूमि कह सकते हैं।

रात को जिन्हें हम ताराओं का टूटना कहते हैं वे तारा नहीं हैं, यह बात आज किसी को समझाना नहीं पड़ेगा। पृथ्वी के आकर्षण से ये उल्का पिंड लाख-लाख की संख्या में दिन रात गिर रहे हैं। उन में के अधिकांश हवा में रगड़ खाकर जलकर राख हो कर गिर जाते हैं। जो कुछ बड़े आकार के हैं, वे जलते जलते मिट्टी पर आ गिरते हैं, बम की तरह फट जाते हैं, और चारों ओर जो पाते हैं उसे ही जला कर भस्म कर देते हैं।

चाँद पर भी यह उल्का वृष्टि हो रही है। उन्हें रोक और

जला कर राख कर सके, ऐसी हवा वहाँ थोड़ी-सी भी नहीं है। इसी लिये वे अबाध भाव से चाँद के सारे शरीर पर ढेला मार रहे हैं। वेग भी कम नहीं है, सेकेंड में प्रायः ३० मील ; इसी लिये चोट भी खूब करारी कर रहे हैं।

चाँद के बड़े बड़े गह्वरों की उत्पत्ति अग्नि-उत्स से ही है। जो गला हुआ पदार्थ और राख उससे निकल आया था, हवा न होने के कारण इतनी युग बीत जाने पर भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। राख से ढका होने के कारण सूर्य का प्रकाश आवरण को भेद कर बहुत नीचे नहीं जा पाता, और नीचे की गर्मी भी ऊपर नहीं आ पाती।

चाँद के जिस ओर सूर्य का प्रकाश पड़ता है उस तरफ की गर्मी प्रायः खौलते हुए पानी के समान है और जिधर नहीं पड़ता उस ओर की सर्दी बर्फ की ठंडक से भी प्रायः २५० डिग्री नीचे की होती है। चंद्रग्रहण के समय जब पृथ्वी की छाया चाँद पर पड़ती है तो उसका उत्ताप कुछ ही मिनटों में प्रायः ३४६ डिग्री कम हो जाता है।

हवा न होने के कारण और राख के आवरण को भेद कर के सूर्य की गर्मी भीतर प्रवेश न कर सकने के कारण चाँद के पास किसी प्रकार का संचित उत्ताप है ही नहीं ; इसी लिये इतना शीघ्र उसकी गर्मी कम हो जाती है। इन सब प्रमाणों से कहा जा सकता है कि चांद का प्रायः सब स्थान ज्वालामुखी पहाड़ की राख से ढका हुआ है।

चाँद पृथ्वी के निकट का उपग्रह है। उसके आकर्षण शक्ति की प्रत्यक्ष उपलब्धि समुद्रों में होती है, जहाँ ज्वार भाटा की लहरें आया करती हैं, और सुना है कि हमारे शरीर की जूड़ी और वात रोग भी उसके आकर्षण से जाग पड़ते हैं। वात के रोगी अमावस्या और पूर्णिमा से बहुत डरते हैं।

आदि काल में पृथ्वी पर जीवन का कोई चिह्न नहीं था। प्रायः सत्तर अस्सी करोड़ वर्ष तक उस पर नाना रूप में तेजका उत्पात चला था। कहीं ज्वालामुखी तप्त वाष्प का फुफकार छोड़ रहा था, तरल धातु उगल रहा था और गर्म जल का फव्वारा उड़ा रहा था और कहीं नीचे से धक्का खा कर भूमितल काँप रहा था, फट रहा था और भूखण्ड धँस रहा था।

पृथ्वी के आरंभ से डेढ़ सौ करोड़ वर्ष जब बीत गये तब अशान्त आदि युग की सिरफुड़ौवल बहुत-कुछ कम हो गई। ऐसे ही समय में सृष्टि की सब से आश्चर्य-जनक घटना दिखाई दी। किस प्रकार और कहां से प्राण और क्रमशः मन का उद्भव हुआ, इसका पता नहीं चलता। उसके पहले पृथ्वी पर सृष्टि के कारखाने में प्राणहीन पदार्थों का उथल पुथल और सर्जन-भंजन चल रहा था। उसका उपकरण था मिट्टी, पानी, लोहा, पत्थर वगैरः, और इनके साथ थीं आक्सिजन, हाईड्रोजन इत्यादि कई गैसें। नाना भाँति के प्रचण्ड अघात से उन्हीं को उलट-पुलट और जोड़-जाड़ कर नदी पहाड़ और समुद्र की रचना और अदल बदल जारी थी। ऐसे ही समय में विराट जीवनहीनता के

भीतर प्राण, और उसके साथ मन, दिखाई दिया। इनके पूर्ववर्ती पदार्थों के साथ इनकी कोई समानता नहीं।

नक्षत्रों का प्रथम आरंभ जिस प्रकार नीहारिका से हुआ उसी प्रकार पृथ्वी पर जीव लोक का जो प्रकाश हुआ उसे प्राण की नीहारिका कह सकते हैं। वह एक प्रकार का अपरिस्फुट छितराया हुआ घनी लाला की भाँति अंगविभाग-हीन, प्राण-पदार्थ था जो उन दिनों के ईषदुष्ण समुद्र-जल पर बहा करता था। उसका नाम रखा गया है प्रोटोप्लाज्म। जिस प्रकार नक्षत्र अग्नेय वाष्प में दाना बाँधने लगता है उसी प्रकार इस में भी एक एक पिण्ड जमा हुए जिनके बनने में अनेक युग लग गये। इनकी एक श्रेणी का नाम दिया गया है अमीबा। अमीबा आकार में अत्यन्त छोटा होता है, दूरबीन से ही दिखाई देता है। गदले पानी में इन्हें पाया जा सकता है। इनके हाथ, मुख या पैर नहीं हैं। यह आहार की खोज में घूमते फिरते है। देहपिण्ड का एक अंश फैला कर पैर का काम करा लेता है, खुराक के सम्पर्क में आने पर उसे सारे शरीर से ढक कर आत्मसात् कर लेता है। सारा शरीर ही उसका मुख है और सारा शरीर ही पाकयंत्र। अपने शरीर का ही भाग करके उसकी वंश वृद्धि होती है। उन्ही दिनों इसी अमीबा की और एक शाखा दिखाई दी, जिस शाखा के जीवों ने घोंघों की तरह देह के चारों ओर आवरण बना लिया। समुद्र में इनके करोड़ करोड़ सूक्ष्म देह हैं। इनका यही देह-

पंक जम-जम कर पृथ्वी पर स्थान स्थान पर खड़िया मिट्टी के पहाड़ बन गये हैं।

विश्व-रचना के मूलतम उपकरण परमाणु हैं, ये ही परमाणु अचिन्तनीय विश्व-नियमों के वशवर्ती हो अत्तन्त सूक्ष्म जीव कोष के रूप में संहत हुए। प्रत्येक कोष सम्पूर्ण और स्वतंत्र है, उन में से प्रत्येक के भीतर एक अपनी ही आश्चर्यजनक शक्ति है जिसके द्वारा बाहर से स्वाद लेकर अपने को पुष्ट करते हैं, अनावश्यक को त्याग देते हैं और अपने आप को बहु-गुणित कर सकते हैं। यह जो बहु-गुणित करने की शक्ति है उसके भीतर से—मृत्यु से होती हुई— प्राण की धारा प्रवाहित हो रही है।

प्राणलोक में यह जीवाणु कोष अकेला हो कर दिखाई दिया। इसके बाद ये जितना ही संघबद्ध होते गये उतना ही जीव जगत् में उत्कर्ष और वैचित्र्य संभव होने लगा। जिस प्रकार करोड़ों नक्षत्रों के समवाय से एक एक नीहारिका बनी है उसी प्रकार करोड़ों जीव कोषों के समावेश से एक एक देह है। वंशावली के भीतर से यह देह-जगत् एक प्रवाह सृष्टि करके नये नये रूपों में अग्रसर हो रहा है। हम लोग अब तक नक्षत्रलोक और सूर्यलोक की चर्चा कर आये हैं, उनकी अपेक्षा कई गुना अधिक आश्चर्यजनक है यह प्राणलोक। उद्दाम तेज को शान्त करके यह क्षुद्रायतन ग्रह रूप पृथ्वी जिस अनतिक्षुब्ध परिणति को प्राप्त हुई है, केवल इसी अवस्था में प्राण और उसके सहचर मन का

आविर्भाव संभव हुआ है। यह बात जब सोचते हैं तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि संसार की यह परिणति ही श्रेष्ठ परिणति है। यद्यपि प्रमाण नहीं है और प्रमाण पाना आपाततः असंभव भी है, तौभी मन यह बात नहीं मानना चाहता कि विश्व-ब्रह्माण्ड में जीव धारण योग्य चैतन्यप्रकाशक अवस्था केवल इस पृथ्वी पर ही घटी है और इस हिसाब से पृथ्वी ही समस्त जगत् धारा का एकमात्र व्यतिक्रम है।

उपसंहार

एक बार जगत् के सब से बड़े आश्चर्य का संवाद ले कर करोड़ों वर्ष पहले तरुण पृथ्वी पर एक छोटी सी जीवकोष की कणा दिखाई दी जो हमारी आंखों के लिये अदृश्य थी। वह कितनी बड़ी महिमा का इतिहास लेकर आई थी और फिर भी किस गोपन भाव के साथ। उसका अनुपम कलामय सृष्टिकार्य देह देह में नई नई परीक्षाओं से गुजरता हुआ निरन्तर चलता आ रहा है। योजना करने की, संशोधन करने की, अत्यन्त जटिल कर्मतंत्र के उद्भावन और संचालन करने की बुद्धि प्रच्छन्न भाव से इस कोष में कहाँ छिपी हुई है, और किस प्रकार इनके भीतर से अपने आप को सक्रिय बना रही है, और उत्तरोत्तर अभिज्ञता का संचय कर रही है—सोचने पर इसका कुछ किनारा नहीं मिलता। अति मृदुल वेदनाशील जीवकोषों का समूह वंशानुक्रम से जीव देह के नाना अंग-प्रत्यङ्ग में यथोचित ढंग से समष्टि बांध रहे हैं, और पता नहीं, किस प्रकार अपने ही भीतर के उद्यम से देह-क्रिया का ऐसा आश्चर्यजनक कर्तव्य-विभाग कर रहे हैं। पाकयंत्रों के जो कोष हैं, उनके काम एक तरह के हैं और मस्तिष्क के जो कोष हैं उनके काम एक दम

दूसरी तरह के हैं। और फिर भी जीवाणु कोष सभी मूलतः एक ही जाति के हैं। किसकी आज्ञा से इनके दुरूह कार्यों का बँटवारा हुआ और किसने इनके विचित्र कार्यों का मिलन संभव करके स्वास्थ्य नामक एक सामञ्जस्य का विधान किया। जीवाणु कोष की दो प्रधान क्रियायें हैं, बाहर से खूराक संग्रह करके जीवित रहना और बढ़ते रहना, तथा अपने ही समान जीवों को उत्पन्न करके वंश-धारा को चलाते जाना। कहाँ से शुरू से ही इस आत्मरक्षा और वंशरक्षा के जटिल प्रयास ने इन पर निर्भर किया।

अप्राण-विश्व में जो सब घटनायें घटी हैं उसके पीछे सारे जड़ जगत् की भूमिका है। मन इन घटनाओं को जानता है, इस जानने के पीछे मन की कोई विश्व-भूमिका कहाँ है। पत्थर लोहा, और गैसों का आपस में जानने का तो कोई सम्पर्क नहीं है। इस दुःसाध्य प्रश्न को लेकर एक विशेष युग में प्राण और मन इस पृथ्वी पर आये—अति क्षुद्र जीवकोष को वाहन बना कर।

पृथ्वी की सृष्टि के इतिहास में इनका आविर्भाव अचिन्तनीय है। लेकिन जो कुछ है उन सब के साथ कोई संबन्धहीन एकान्त आकस्मिक अभ्युत्थान को हमारी बुद्धि मानना नहीं चाहती। हम इस जड़ विश्व के साथ मनोविश्व के मूल-गत ऐक्य की कल्पना सर्वव्यापी तेज या ज्योति पदार्थ के रूप में कर सकते हैं। बहुत दिनों के बाद विज्ञान ने आविष्कार किया है

कि ऊपर ऊपर से देखने से जो स्थूल पदार्थ ज्योतिहीन दिखाई देते हैं, उनमें भी प्रच्छन्न रूप में नित्य ही ज्योति की क्रिया चल रही है। उसी महाज्योति का सूक्ष्म विकास प्राण में है और और भी सूक्ष्मतर प्रकाश है चैतन्य में और मन में। विश्व-सृष्टि के आदि में जब महाज्योति के सिवा और कुछ नही पाया जाता तो कहा जा सकता है कि चैतन्य में उसीका प्रकाश है। जड़ से लेकर जीव तक में, एक एक करके पर्दा उठते उठते मनुष्य में आ कर इस महा चैतन्य का आवरण मोचन करने की साधना चल रही है। जान पड़ता है चैतन्य की इस मुक्ति की अभिव्यक्ति ही सृष्टि का अन्तिम परिणाम है।